पत्थर की आँख

बाहर भीतर

स्थान सुन्दर है।

गंगा का ऐसा छायादार हमवार किनारा मुश्किल से नज़र आता है। मल्लाह ने किनारे के लंबे पेड़ से किश्ती बांध दी।

गुलशाद के जी में जी आया। लगातार कई दिनों तक नदी पर रहने से जी घबरा गया था।

अपने बत्तीसों दाँत दिखाता हुआ मल्लाह बोला—"बीबी जी, मर्जी हो, तो यहाँ दो दिन आराम कर लें। कोई तकलीफ न होगी। यहाँ से उत्तर की तरफ़, करीब दो कोस के फासले पर, एक छोटा-सा गाँव है।"

गुलशाद ने किनारे उतर कर थोड़ी देर तक चहलकदमी

की। फिर किश्ती पर आ गयी। सामने जहाँ तक दृष्टि जाती है, मैदान-ही-मैदान नजर आता है। इन मैदानों से होता हुआ एक टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता गाँव जाने के लिए है। बीच-बीच में कहीं पेड़ भी हैं। चारों तरफ खामोशी है।

वाकई, जगह दिलकश है।

एक ओर अनन्त जलराशि और दूसरी तरफ मुलायम रेत का मैदान। खुले आसमान के नीचे हमेशा बहने वाली नदी की धीमी-धीमी गति।

यह तय हुआ कि दो दिन के बाद यहाँ से रवाना हुआ जाय।

एक चीज वे सुबह से ही देख रहे हैं। काफी दूर पर न जाने किसकी एक सफेद रंग की मोटर-बोट चुपचाप खड़ी है। मालूम नहीं होता कि उसमें कोई आदमी है या नहीं। बोट देखने में बहुत सुन्दर है।

जमील ने अंदाज से कहा—"शायद कोई साहब हवा खाने आया होगा।"

अपना चेहरा संजीदा बना कर मल्लाह ने कहा—"काशीपुर के कुंवर साहब इधर एक टापू पर अक्सर शिकार खेलने आते हैं।"

सुन कर गुलशाद पहले तो डर से काँप गयी। फिर, धीरे-धीरे डर दूर हो गया।

साहब या कुंवर साहब होते, तो कम-से-कम एक बार तो

दिन भर में जरूर नजर आते। इसलिये यह ख्याल हुआ कि बोट यों ही खड़ी है। उसमें कोई नहीं है।

किश्ती से लगभग दो-तीन फर्लाङ्ग के फासले पर नदी का टापू रेगिस्तान की तरह चमक रहा है। बीच-बीच में पानी की लहरें धूप में चमकती हैं। यह तय हुआ कि कल बहुत सबेरे ही किश्ती खोल दी जाय और टापू की सैर की जाय।

आकाश में बगुलों का एक झुंड साँ-साँ आवाज करता हुआ उड़ा चला जा रहा था। किश्ती के बालखाना से दौड़ती हुई गुलशाद बाहर आयी और बगुलों को बड़े गौर से देखने लगी।

दोपहर।

खा-पीकर जमील को कुछ आलस्य आ रहा है। हाथ की किताब एक तरफ रख कर वह लेटने ही वाला था कि गुलशाद ने पुकारा—"अरे, देखो।"

"क्या बात है?" जमील उठ बैठा।

गुलशाद के चेहरे पर ताज्जुब था।

जमील ने सवाल किया—"क्या माजरा है, बताओ न!"

"है क्या, जरा देखो तो सही। यहाँ से साफ नजर आता है।"

बालखाना में छोटे-बड़े कई छेद थे। अँगुली से उन छेदों की तरफ इशारा कर के गुलशाद ने धीरे से कहा—"सफेद बोट! देखो, क्या हो रहा है?"

छेद से बोट की तरफ जमील आँखें गड़ाये रहा। गुलशाद एक

दूसरे छेद से देख रही थी। वाकई, उन दोनों को मामला कुछ अजीब-सा लगा।

कुछ देर बाद अस्फुट और आहिस्ता से गुलशाद ने सवाल किया—"कुछ समझे ?"

"नहीं।"

"एकदम फैशन की पुतली है।"

"यह तो देख ही रहा हूँ।"

"क्या उम्र होगी, यही बीस-इक्कीस ?"

"ठीक अंदाज नहीं लगा सकता," जमील ने कहा—"हाँ, इससे कम नहीं। बाईस-तेईस की भी हो सकती है।"

"कहीं औरतें भी बंसी से मछलियाँ पकड़ती हैं ?"

"इसमें क्या हर्ज है ?" जमील ने कहने को तो यह कह दिया, लेकिन खुद उसे यह दृश्य न जाने कैसा लग रहा था।

"शादीशुदा है ? शायद नहीं।" अपनी आँखों को और भी गड़ाते हुए गुलशाद ने जैसे अपने आप ही से कहा—"कुछ मालूम नहीं पड़ता।"

जमील चुपचाप सोच रहा था। मल्का की तरह बोट की छत को रौशन करने वाली यह कौन है ? इसका परिचय क्या है ? वह नीले रंग की साड़ी पहिने हुए थी। सिर खुला हुआ था। गले में लिपटा हुआ आँचल हवा में झंडे की तरह फरफर उड़ रहा था। बायें हाथ में लाल रंग का छोटा-सा छाता तिरछा कर के पकड़े हुई थी। वेश-भूषा से वह बहुत 'माडर्न' लगती थी। जमील

देखता रहा। गुलशाद ने जब उसकी पीठ में खोंचा दिया, तो वह सीधा होकर बैठ गया।

"कुछ सुनाई नहीं देता, क्यों?" गुलशाद की आँखों में शरारत थी।

"क्या कहा?"

"तुम तो बस एकदम फिदा हो गये।"

"ओ, यह बात है!" जमील हँसा। फिर गंभीरता से कहा—"इसमें बुराई क्या है?"

"मैं इसे बुरा कब बता रही हूँ?" गुलशाद ने दिखाने को मुँह फुला लिया।

जमील उठा। कोट से सिगरेट निकाली। कहा—"देखो, ऐसी हजारों देखी हैं। इन्हें कहते हैं, माडर्न—फैशन की पुतली!"

पति की बात सुन कर गुलशाद खिलखिला कर हँस पड़ी।

"सच कहता हूँ, इनमें सिर्फ झूठी शान और ऊपरी चमक-दमक है।" जमील ने सिगरेट जलायी। "इतनी लंबी-चौड़ी धींगड़ी है और बॉब बाल कटाये है, जैसे छोटी-सी बच्ची हो।"

"अपनी तरफ दूसरों को खींचने की यह सारी कोशिश है। इससे अच्छा था कि सारा सिर ही घुटवा लेती।" गुलशाद हँसने लगी

"औरतों का यह बेहयापन आँखों में बहुत खटकता है।"

और इसी बारे में पति-पत्नी काफी देर तक बातें करते रहे। दरअसल, उनमें से कोई भी इसका सही अंदाज न लगा सका कि यह युवती कौन है।

दोपहर के वक्त मल्लाह गाँव चला गया।

जमील भी सोने लगा।

गुलशाद चुप बैठी रही।

अब भी उसकी आँखें छेद में गड़ी थीं। वह सफेद बोट को आश्चर्य से देख रही थी। इस बीच वह युवती दो वार छत से उतर कर बोट के अन्दर न जाने क्या करने गयी और फिर छत पर आ बैठी।

धीरे-धीरे शाम हो गयी।

बोट से उतर कर किनारे पर खड़ी हुई वह युवती एक आदमी को बड़े जोर से डांट रही थी।

गुलशाद ने जमील के मुँह की तरफ ताका। उसकी अक्ल हैरान थी।

"क्या बात है, कुछ पता चला?"

"वह तो जैसे किसी से लड़ रही है।"

"अच्छा?"

"हाँ, बड़ी अफलातून औरत मालूम होती है।"

काफ़ी देर बाद मल्लाह आया। वह उधर से ही आ रहा था। बोट के सामने थोड़ी देर खड़ा रह कर उसने यह पता लगा लिया कि क्या वात है। ज्यों ही वह किश्ती में घुसा की गुलशाद ने पूछा—"उस बोट के बारे में कुछ..."

"सिर्फ एक दुअन्नी के लिये वह युवती झगड़ रही थी।"

"किस से? कोई दूकानदार..."

"हाँ। सुबह दो पैकेट सिगरेट दे गया था, गलती से एक खोटी दुअन्नी दे दी थी।"

"एक दुअन्नी, सिर्फ एक दुअन्नी—इस जरा सी बात के लिये ? कहता क्या है रे ?"

गुलशाद की आँखें चौड़ी हो गयीं, जमील की तरफ घूम कर बोली—"सुना कुछ ?"

मल्लाह ने कहा—"बिलकुल मेम साहब-जैसा मिजाज है।"

"चूल्हे में जाय ऐसा मिजाज !" गुलशाद चिढ़ कर बोली।

उपेक्षा से जमील ने कहा—"यह सब झूठी शान है, लोगों पर रोब गाँठने की बातें ! अब मुझ से इस बारे में कुछ न कहो।"

और यह बात तब वहीं खत्म हो गयी।

चूल्हा जल रहा था और गुलशाद रोटी सेंक रही थी। सामने बैठा हुआ जमील गप्पें लड़ा रहा था। उधर, नाव के बाहर अँधेरे में बैठा हुआ मल्लाह हुक्के का दम लगा रहा था।

हवा जोरों से चल रही थी। कभी-कभी झोंके नाव को हिला देते और लालटेन काँप जाती। पानी की लहरें किनारे से टकरा कर छलछल आवाज करतीं। खाना बनाना खत्म होने को था, उसी समय उधर बोट से एकाएक नारी-कंठ की संगीत-लहरी शुरू हुई।

कान खड़े कर के गुलशाद ने कहा—"कौन गाना गा रहा है ?"

"और कौन होगा ? वही..." जमील ने सीधा जवाब दिया।

"मोटर-बोट वाली युवती ?"

"मेरा तो यही ख्याल है, और कौन होगा।"

"इस अँधेरी रात में ? किश्ती पर ? नदी में ?"

गुलशाद की दोनों आँखें जैसे बड़ी हो गयीं—"हिम्मत तो कम नहीं।"

"तुम जाकर मना कर आओ न," सिगरेट के धुएँ का रिंग बनाते हुए जमील ने चुहल की।

गुलशाद चुप हो गयी। अनजान जगह रात के वक्त किश्ती में बैठ कर अपने गले की बहार दिखाने वाली यह युवती किस जाति की है ? और वह भी अगर कोई भजन वगैरा होता तो एक बात थी। यह तो बिलकुल फिल्मी गाना है। जमील के कान के पास मुँह ले जाकर उसने कहा—"मुझे आसार अच्छे नजर नहीं आते।"

इशारा समझ कर भी जमील चुप रहा।

बहुत रात तक गुलशाद लेटी हुई उसी के बारे में सोचती रही। गाना खत्म हो जाने के बाद भी उसके कानों में वही गाना गूँज रहा था।

•

जैसा कि तय हुआ था, दूसरे दिन बहुत सबेरे ही मल्लाह ने नाव छोड़ दी। उस वक्त आसमान में एक तारा चमक रहा था।

मल्लाह ने कहा—"टापू देख कर लौटने तक दोपहर हो जायगी।"

जवाब में गुलशाद ने कहा—"जरा जल्दी - जल्दी हाथ चलाओ।"

मल्लाह ने जरा मुस्करा कर सिर हिलाया। उसके बाँये हाथ में हुक्का था, किश्ती बीच नदी में थी। उसने हुक्का रख दिया और डाँड़ चलाने लगा।

देखते-देखते बीच नदी पार कर किश्ती किनारे आ लगी।

आँखों के सामने निर्जन रेत का मैदान है। पूरब का आकाश गुलाबी रंग से रंगीन हो गया है।

जमील ने कहा—"चलो।"

"कहाँ?" गुलशाद की आँखें बड़ी हो गयीं।

"यही तो टापू है," जमील ने गुलशाद का हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा—"आओ, सुबह की हवा में जरा यहाँ घूमें फिरें।"

टहलते-टहलते वे एक नाले के नजदीक पहुँचे।

अचानक कुछ जंगली बगुले इधर-उधर उड़ गये। गुलशाद के कान को छूता हुआ एक बगुला चला गया।

मजाक में जमील ने कहा—"हाथ बढ़ा कर पकड़ा क्यों नहीं?"

सामने न जाने क्या देख कर अचानक गुलशाद चौंक पड़ी। उसकी दृष्टि का अनुसरण कर जमील भी खड़ा हो गया। नाले के उस पार उनकी नजरें गड़ गयीं।

वही मोटर-बोट वाली युवती है, हाथ में बन्दूक।

आँखें चार होते ही वह बालू के पहाड़ से उतर कर नाले को फाँदती हुई करीब आयी और नमस्कार कर जरा मुस्कराते हुए बोली—"आप लोगों ने मेरा शिकार उड़ा दिया। इतनी देर

बाद बड़ी मुश्किल से निशाना ठीक किया था।"

विमूढ़ जमील के मुँह से आवाज निकलना तो दूर रहा, नमस्कार करने के लिये हाथ तक नहीं उठे। एक तरफ खड़ी गुलशाद न जाने कैसी हो रही थी।

बन्दूक को बायें हाथ में ले कर मुँह पर आये हुए बालों को दाहिने हाथ से हटाते हुए उसने कहा—"मैंने कल आप लोगों को दो-एक बार देखा था। आप लोग..."

जमील और गुलशाद उसके मुँह की तरफ ताज्जुब से देखते रहे। उसने फिर कहा—"आप लोग तो शायद अभी यहाँ आए हैं? मैं तो बहुत तड़के, जब सूरज भी नहीं निकला था, तभी की आयी हुई हूँ।"

हिचकिचाहट इस लड़की में कतई नहीं है, आवाज सुरीली है। वह बोलती गयी—"आ कर अभी तक एक चिड़िया का भी शिकार नहीं कर सकी, और आज अब होगा भी नहीं। धूप भी तेज हो गयी है।"

एक बार वह रुकी और गंभीरता के साथ उसने नदी को देखा। "अच्छा तो अब मैं जाती हूँ। देर होने पर वे नाराज होंगे।"

जाते-जाते रहस्यमयी खड़ी हो गयी। जमील और गुलशाद की ओर घूम कर बोली—"आप लोग एक बार हमारी बोट में आने की तकलीफ जरूर करें!"

दोपहर के आसमान की तरह उसकी नजर रौशन और तेज थी। सीटी बजाती हुई वह तेजी के साथ चली गयी।

छोटी-सी नाव थी , साथ में कोई नहीं था। अपने हाथ से डाँड़ चलाती हुई देखते-देखते उसकी नाव बीच नदी में पहुँच गयी।

यह देख गुलशाद ने एक लंबी साँस छोड़ी। आश्चर्य का भाव दूर हो जाने पर वह अपनी सहज स्वाभाविकता में लौट आयी। उसने विचित्र आवाज में कहा—"यह तो मर्दों के कान काटती है।"

जमील जोर से हँस पड़ा। फिर बोला—"मैंने ऐसी माडर्न छोकरियाँ बहुत देखी हैं।"

किश्ती में लौटते वक्त गुलशाद ने धीरे से कहा—'वे' कौन होंगे? जाते वक्त कहा था न?"

"और कौन होगा? दो-चार यार दोस्त होंगे।"

गुलशाद को रात के गाने की याद आ गयी।

दोनों ही थोड़ी देर चुप रहे। मल्लाह डाँड़ चला रहा था। नाव बीच नदी में थी और उसके हिलने डुलने से गुलशाद डर रही थी। उसने जमील की बाँह को कस कर पकड़ रक्खा था।

एक चील मल्लाह के सिर पर से उड़ गयी।

जमील ने कहा—"हम आधुनिक हैं। इसलिये मेमों-जैसे औरतों के 'बॉब हेयर' कटायेंगे, सिगरेट पीना और 'टी-सर्व' करना सिखायेंगे, बिरचिस पहना कर घोड़े दौड़वायेंगे, पुरुष-मित्रों के साथ सैर-सपाटे को भेजेंगे। यह सब क्या है?"

कौतूहल मनुष्य के स्वभाव में है।

चाहे जितनी भी घृणा और नाराजगी हो, लेकिन एक बार बोट के भीतर झाँके विना उनसे न रहा गया।

उस युवती की ओर से और कुछ हो या न हो, लेकिन मौखिक शिष्टाचार की कमी न होगी, यह उन्होंने पहले ही सोच लिया था।

और यही हुआ। खातिरदारी करने के लिये वह युवती बेचैन हो उठी। बोट के अन्दर पहुँच कर गुलशाद और जमील अचंभे में आ गये।

बोट में एक छोटी-सी गृहस्थी का सारा सामान था। युवती की आँखें तारों की तरह रौशन थीं। दोनों तरफ की खिड़कियों पर नीला पर्दा लगा हुआ था।

गुलशाद और जमील को दो सोफों पर बैठा कर वह लड़की बगलवाली खाट के सिरहाने जाकर खड़ी हो गई।

उस खाट पर आगन्तुकों की तरफ पीठ किये हुए एक व्यक्ति सो रहा था। उसके कान से मुँह लगा कर लड़की ने जोर से कहा—"वे लोग आये हैं, पति-पत्नी।"

उस व्यक्ति ने धीरे-धीरे करवट बदली। गुलशाद और जमील की ओर मुँह कर के उसने उठ कर बैठने की कोशिश की, लड़की ने मदद दी। पीठ के पीछे एक तकिया लगा दिया।

'बीमार हैं?'—जमील यह पूछने ही को था; लेकिन एकाएक रुक गया। गुलशाद भी चौंक उठी।

उस व्यक्ति का एक हाथ कटा हुआ था। बायाँ पैर भी

घुटने के बाद नदारद था। बहुत अस्पष्ट और धीमी आवाज में उसने कहा—"मुझसे सुबह नीलिमा ने कहा था। आप लोगों ने यहाँ आने का कष्ट किया, बहुत मेहरवानी है। गंगा जी की सैर करने निकले हैं?"

उदास और पत्थर-जैसी आँखें।

बात का जवाब देने की साधारण शिष्टता भी गुलशाद और जमील जैसे भूल गये। असहाय, पंगु शरीर को वे तब भी ताज्जुब से देख रहे थे

कुछ देर बाद जमील ने प्रश्न किया—"आपकी यह हालत कैसे हुई....?"

"एक क्रेन गिर पड़ा था," युवती ने जवाब दिया—"यह कोई चार साल पहले की बात है। उन दिनों हम विजिगापट्टम में थे। विलायत से लौटने के बाद सब से पहले इन्हें वहीं चीफ इंजिनियर बना कर भेजा गया था। हमारी शादी का वह पहला वर्ष था।"

वह व्यक्ति बेचैन हुआ। उसने एक ठंडी साँस छोड़ी।

जमील और गुलशाद के मुँह से एक दबी हुई चीख निकल गयी।

"हाँ, इसीलिये तो कहती हूँ कि शायद तुम्हारे जीवन में,"—शून्य और स्थिर दृष्टि से कुछ देर तक खिड़की की तरफ देखने के बाद नीलिमा ने कहा—"मैं बर्बादी ही ले कर आई थी।"

"छिः! ऐसी बातें नहीं कहते," कुछ उत्तेजित हो वह व्यक्ति सामने की तरफ झुकने को हुआ कि नीलिमा ने उसे फौरन पकड़ लिया और दिलासा देने लगी।

"नहीं, तुम्हारी यह बात मुझे बहुत बुरी लगती है!" उस व्यक्ति ने कहा।

"अच्छा, अब फिर कभी नहीं कहूँगी!" गद्गद हो नीलिमा बोली।

'हाँ, अब कभी ऐसी बातें न कहना!"

"उस चोट से ही छाती में कुछ तकलीफ पैदा हो गयी है। डाक्टर की राय है कि गाँव और उससे भी अच्छा, किसी नदी में जाकर रहना होगा। आज तीन साल से हम इसी मोटर-बोट पर हैं।" बात के अन्त में दोनों की तरफ देख कर नीलिमा जरा हँसी।

उस व्यक्ति ने क्षीण स्वर में कहा—"सिर्फ गंगा जी में घूमने से ही रोग अच्छा नहीं होता और न कोई जिन्दा ही रह सकता है। इनकी सेवा-सुश्रूषा और प्रेम ने ही मुझे अब तक जिन्दा रक्खा है।"

नीलिमा चुप।

गुलशाद और जमील ने भी ठंडी साँस छोड़ी।

विदा ले कर जब वे जाने लगे, तो नीलिमा उन्हें दरवाजे तक पहुँचाने आयी।

"आप लोगों के आ जाने से बड़े मजे में काफी वक्त कट गया। यदि वे आप लोगों को देख सकते, तो और भी खुश होते।"

"याने?" गुलशाद और जमील ने चौंक कर पूछा।

"नर्व में चोट लगने की वजह से उनकी दोनों आँखें खराब हो गई हैं।"

शाम के वक्त किश्ती छोड़ दी गयी। नाव में बाहर खड़े हो कर, एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए गुलशाद और जमील सफेद मोटर-बोट को गौर से देख रहे थे। उस वक्त वहाँ से नारी कंठ की अपूर्व संगीत-लहरी आ रही थी।

जिन्दगी की चट्टान पर खड़ी हो कर वह मौत से लड़ रही थी!

उजाला या अंधेरा

लंबी-लंबी जुल्फें, दाढ़ी-मूंछ सफाचट, गले में सोने की चेन, मलमल का कढ़ा हुआ कुर्ता जिसके बटन खुले हुए।

डर के मारे सीता का मुँह सूख गया। वह खिड़की के सामने खड़ी चोटी कर रही थी। उस व्यक्ति को देखते ही पीछे हट गयी। आइने में उसने देखा, इस जरा-सी देर में ही माथे पर पसीना आ गया है। उसने फिर क्रीम मला।

सीता जल्दी-जल्दी सीढ़ी से नीचे उतरी ताकि उसे दरवाजे पर ही रोक दिया जाय। सर्वनाश की इस आग को जैसे भी हो, आगे बढ़ने से रोकना ही होगा।

लेकिन देर हो गयी। इस बीच वह व्यक्ति मकान के भीतर दाखिल हो चुका था। सिर्फ दाखिल ही नहीं हुआ था, बल्कि बगल वाले कमरे में घुसकर उसने दरवाजा भी बन्द कर दिया था।

दरवाजे के सामने जमीन पर सीता धम से बैठ गयी। अब मीयाद खत्म होने वाली है। अब एक घण्टे बाद, जब रमेश को सारी हकीकत मालूम हो जायगी, इस धूल पर भी उसका कोई अधिकार नहीं रहेगा। इसी हालत में, यही कपड़े पहने हुए, चुपचाप सिर झुकाये इस मकान से उसे निकलना पड़ेगा—इस व्यक्ति के साथ ही जो आज उसका सर्वस्व लूटने पर उतारू है। ऐसा लगता है जैसे यह विषैला अजगर उसे निगलने के लिए पाताल से निकल पड़ा हो।

सीता ने अपने कान दरवाजे पर लगा दिये। बन्द कमरे में बातचीत हो रही थी, कुछ सुनाई नहीं पड़ा। सिर्फ कानाफूसी की आवाज से ऐसा लगा जैसे भीषण षड्यंत्र हो रहा हो।

उस व्यक्ति को जो कुछ कहना था, अबतक अवश्य वह सब कुछ कह चुका होगा। उसने अपनी पिटारी खोल दी है। सीता के जीवन की सिर्फ एक मिथ्या, एक मात्र प्रवंचना ही उसके लिये कांटा बन गयी है। उसी कांटे को वह धीरे-धीरे मर्मस्थल में चुभा रहा है।

रमेश क्या कह रहा है, सीता यह जानने के लिये उत्सुक हो उठी। उसने क्या उस व्यक्ति की बातों पर विश्वास कर लिया? विश्वास न करने के अलावा और दूसरा चारा भी क्या है? जब

वह व्यक्ति इतनी खोज और तलाश के बाद यहाँ आया है, तब क्या बिना पूरा सबूत लिये ही आया होगा।

दो-एक बार रमेश की धीमी आवाज सुनाई पड़ी। उसने क्या कहा, सीता की समझ में यह नहीं आया। पर मानो उसने स्पष्ट देखा—अप्रत्याशित और कटु-सत्य की चमक से उसका मुँह झुलस कर काला पड़ गया है। अँगुलियाँ जकड़ गयी हैं, कुर्सी के हाथ को कस कर पकड़े वह सिर झुकाये बैठा है। प्याली एक बार खत्म कर पीने वाला जैसे शून्य पात्र को आगे बढ़ा कर फिर भरने का आदेश देता है, कुछ-कुछ वैसे ही रमेश भी सुन रहा है, उसका सिर घूम रहा है ; कह रहा है, हाँ-हाँ, फिर इसके बाद ?

सीता जानती है कि इसके बाद क्या होगा। इस व्यक्ति के चले जाते ही लड़खड़ाते कदमों से रमेश बाहर निकलेगा। क्रोध और घृणा से सीता को लाल आँखों से देखेगा। और, इसके बाद ? लातों से उसकी पूजा करेगा या चोटी पकड़ कर घसीटते हुए उसे घर से बाहर निकाल देगा।

जो इच्छा हो, सो करे। सीता ने अपने हृदय पर पत्थर रख लिया। दो दिन का यह स्वर्ग-सुख यदि मिटता है, तो मिट जाने दो। दीवार का सहारा लेते हुए सीता धीरे-धीरे उठ बैठी। उसके पैर काँप रहे थे, तो भी रेलिंग पकड़े हुए वह ऊपर चढ़ गयी।

मेज पर सुबह के फूल रखे हुए थे, वे अब भी ताजा थे। बिछौने पर कुछ देर पहले ही धोबी की धुली हुई सफेद चादर

बिछायी थी। उसके मुख पर विषाद छा गया, रुलाई आने लगी। अब इस बिछौने पर वह कभी नहीं सो सकेगी। आँसुओं से भीगे अपने कपोल तकिये पर रख कर उसने आँखें मूंद लीं। यह स्वप्न जितनी देर रहे, उतना ही अच्छा।

लेकिन कुछ देर बाद ही उसे उठना पड़ा। सारे शरीर में बहुत बेचैनी थी, सीने में दर्द था, गले और आँखों में जलन हो रही थी। कितनी देर में वह व्यक्ति जायगा और रमेश कब ऊपर आयेगा।

कमर से चाबी का गुच्छा निकाल कर सीता ने मेज पर रखा। गहने तो बहुत मामूली और थोड़े से ही शरीर पर हैं, इन्हें वह अपने साथ ही ले जायेगी। नयी जिन्दगी की यही पूँजी होगी।

पर ये इयरिंग ? ये तो रमेश ने ही दिये हैं। इन्हें तो उतार कर रख जाना पड़ेगा। आइने के सामने खड़ी सीता अपने आँसुओं को बार-बार पोंछ रही थी। फिर उसने इयरिंग उतारने की कोशिश की। पर काँपता हुआ हाथ फिसल गया। कान के पास के बालों में इयरिंग उलझ गये थे और बहुत कोशिश करने पर भी नहीं खुले। हार कर उसने छोड़ दिये। रमेश अपने हाथों से ही इन्हें खोल लेगा। शायद इन्हें पकड़ कर खींचेगा, कान कट जायगा। खून में सने हुये और बालों में उलझे हुए इन इयरिंगों को वह अपनी जेब में रख लेगा। सीता को कुछ चोट तो जरूर पहुँचेगी, कानों से खून बहेगा, जड़ की तरह शरीर निस्पंद हो जायगा, शायद मुँह से चीख भी निकल पड़े। पर यह

ऐसा क्या है ? सीता तो यह देखना चाहती है कि रमेश कितना निष्ठुर हो सकता है।

मेज़ पर रखी घड़ी की टिक-टिक सुनाई पड़ रही थी। सीता ने देखा, साढ़े छः बजे थे। घड़ी की टिक-टिक यह बता रही थी कि अब समय खत्म होने वाला है, सीता के विवाहित जीवन की मीयाद पूरी होने को है। सीता के आतंकित दिल की धड़कन ही सिर्फ इस आवाज का साथ दे रही थी।

सीता ने मन ही मन अपने विवाहित जीवन के इन कई दिनों की तुलना नाटक के दो अंकों के बीच होने वाले इंटरवल से की। अन्धकार, बन्द दरवाजे, प्रेक्षागृह—फिर कुछ मिनटों के लिये एकाएक रोशनी, सब दरवाजे खुल गये। इसके बाद फिर अन्धकार।

अंधकार के अलावा और है भी क्या ? गैस्टिन-बैस्टिन रोड की गली में बिताये दिनों को बुरे सपने के अलावा और समझा भी क्या जा सकता है ? अब फिर सीता वहीं लौट जायगी। माँ से जा कर कहेगी—तुम्हारी उच्चाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये मैंने बहुत कुछ किया, माँ। अब माफ करो। मैं जो कुछ हूँ, मुझे वही रहने दो।

तब क्या पूता का चेहरा सफेद नहीं पड़ जायगा ? पूता के दिमाग में भी यह कैसा विचित्र ख्याल आया था। उसका अपना सारा जीवन गैस्टिन-बैस्टिन रोड की गली की कीचड़ में बीता, जहाँ संध्या होते ही बेसुरे हारमोनियम की आवाज, तबले की

धक-धक और पायल की ध्वनि सुनाई देने लगती है। रात के डेढ़-दो बजे तक सवारियों के अवागमन से चहल-पहल रहती है।

लेकिन पूता को यह जीवन पसन्द न था। इसमें उसकी रुचि न थी। वह तो पारिवारिक जीवन का स्वप्न देखती थी—एक छोटा सा घर हो, पति हो और बच्चों की किलकारियाँ हों।

पूता के देखते-देखते गौरा ने मकान खरीदा, उसकी उम्र भी काफी हो चुकी थी। उस कोठे की मालकिन बन कर वह सबकी मौसी बन बैठी। और पूता को अधेड़ अवस्था में ही घर-घर महरी का काम करना पड़ता। समय रहते हुए वह कुछ नहीं बचा सकी थी। सच तो यह है कि पूता के चेहरे ने ही उसे धोखा दिया। आवाज भारी थी, इसलिये गा नहीं सकती थी, मोटी-मोटी अँगुलियों से बाजा भी नहीं बजता था और शरीर भी ढल चुका था।

गौरा को उस पर रहम आता था। कहती, 'तू ख़ुद तो कुछ भी नहीं कर सकी पूता, अब अपनी लड़की मुझे दे दे। ऐसा इकहरा बदन, ऐसी सुन्दर और स्वस्थ, यह उठती हुई जवानी, कमाई का वक्त तो यही है। सच कहती हूँ, सोने से तेरा घर भर देगी।'

गौरा मौसी के मकान में जब उसने पेशा प्रारंभ किया, तब शुरू-शुरू के दिनों की आज भी याद आते ही कंपकंपी आ जाती है। शाम होते ही सब की सब नहाना शुरू कर देतीं, केश शृंगार कर माथे पर बिंदी लगातीं। फिर खुले हुए दरवाजे के दोनों

आर दो लाइनों में खड़ी हो जाती थीं। इन सबों में लाली सबसे ज्यादा साहसी थी। कभी-कभी वह लाइन से निकल कर आम सड़क तक से ग्राहकों को ले आती थी। मौका मिलने पर लोगों का हाथ पकड़ कर खींचातानी करने में भी संकोच नहीं करती थी।

गोदी में एक छोटा-सा पिल्ला, दाहिने हाथ में सिगरेट, लाली का चेहरा आज भी सीता को स्पष्ट याद है।

पहले-पहल सीता का दिल धड़कता था। चौखट पार कर उस तंग पैसेज में खड़े हो कर लोग दियासलाई जलाते थे, पर सिगरेट जला लेने के बाद भी सलाई बुझाते नहीं थे। एक-एक कर सबके मुँह के सामने जलती हुई सलाई घुमाते थे। लाली और रामी या तो कोई अश्लील गाली देतीं, अथवा खिलखिला कर एक दूसरे के ऊपर गिर पड़तीं। और सीता दोनों हाथों से अपना मुँह ढांप लेती थी। मन ही मन प्रार्थना करती—हे भगवान, ये मुझे पसन्द न करें, तो अच्छा।

लेकिन तो भी कोई न कोई तो पसन्द कर ही लेता। उन अपरिचितों को ले कर कमरे की चटखनी बन्द करने के लिये हाथ आगे नहीं बढ़ते थे, दिल की धड़कन जोर से होने लगती थी, सारा शरीर ठंढा पड़ जाता था। उनके गले में पड़े हुए मोतिया और चमेली के फूलों के हार की सुगन्ध को दबाती हुई मदिरा की तेज गन्ध ही चारों ओर फैल जाती थी।

दूसरे दिन सुबह फिर जैसे का तैसा। नहाने-धोने के बाद

शरीर ऐसा लगता था जैसे प्रथम वर्षा में भीगी हुई मिट्टी की तरह स्निग्ध, चिकना और नरम हो।

गौरा मौसी कभी-कभी उसे गंगा स्नान कराने ले जातीं। घाट वाले से चंदन का तिलक लगाकर मौसी एक घड़ा गंगा जल ले कर लौटतीं। सारे मकान में और सब चीजों पर गौरा उस जल के छींटे देती थीं। कहती थीं, चारों ओर पाप फैला हुआ है।

शुरू-शुरू में उसे कुछ आश्चर्य होता था, पर कुछ अरसे बाद सीता को ये सब बातें देखने में मजा आने लगा। दोपहर को खाने पीने के वाद यही गौरा मौसी कुछ दूसरी तरह की हो जाती थीं। तव वह अपने बालों को जटा की तरह बांध लेतीं, स्थूल शरीर का आवरण ढीला कर सबसे हिसाब लेती थीं।

साधारण हिसाब के अलावा गौरा मौसी का और भी एक ऊपरी हिसाब था। कानून की नजर बचाते हुए गौरा मौसी चोरी से देशी शराब का धंधा भी करती थीं। जो लोग यहाँ आते थे, उनमें से अधिकांश पहले से ही चूर होकर आते थे। लेकिन तो भी यहाँ आ कर उनकी प्यास जैसे और बढ़ जाती थी। उस समय रात होती। सुरा कहाँ है?

गौरा मौसी के पास है। उनकी खाट के नीचे जो लोहे का संदूक रखा है, उसमें हमेशा बोतलें मौजूद रहती थीं। कमरे का दरवाजा खोल कर एक युवती बाहर निकलती, गौरा मौसी बरामदे के एक कोने में खड़ी रहतीं। 'क्यों री, क्या चाहिए?' पास आकर बहुत प्रेम से पूछतीं।

आँखें मटकाती हुई युवती कहती, 'है ?'

'है। कितनी बोतलें चाहिए ?'

धीरे से खाट सरका कर, उस गुप्त सन्दूक का ढक्कन खुलता, बोतलें चमक उठतीं और फिर ताला बंद हो जाता। आँचल में नोट बांधते-बांधते कहतीं, 'भागो यहाँ से। जाओ, जाओ। सब की सब यहाँ आ मरी हैं।'

युवतियाँ मंद-मंद मुस्कातीं। कहतीं, 'और कितनी बोतलें बची हैं, गौरा मौसी ?' और तब गौरा उन्हें गंदी-गंदी गालियाँ देने लगती। 'बोतलें ? कैसी बोतलें ? सन्दूक में तो सिर्फ गंगा जल ही भरा है।'

'सिर्फ गंगाजल , मौसी ?'

हँसते-हँसते युवतियाँ चली जातीं, गौरा भी हँसने लगती। 'इस महीने में यदि पचास बोतलें निकाल दे रामी, तो मैं तेरे कुत्ते का मांस आधा पाव से एक पाव कर दूँगी।'

क्रमशः सब कुछ सहने की आदत पड़ती जा रही थी। लेकिन तो भी रामी के कमरे में जिस दिन एक आदमी का खून हो गया, उस दिन सीता बहुत डर गयी। पुलिस आयी और उन सब को पकड़ कर ले गयी। तरह-तरह से जिरह की। रामी को शायद मारा-पीटा भी था। उनके साथ गली के मोड़ का पान वाला भी गिरफ्तार हुआ था।

कुछ दिनों बाद उनका छुटकारा हो गया। लोगों का कहना था कि गौरा ने पुलिस को काफी घूस दी थी। पर रामी नहीं

छूटी। सारा किस्सा जब मालूम हुआ, तो सीता को बहुत दुख पहुँचा था। उस आदमी न कुछ दिनों पहले ही रामी के यहाँ काफी आना-जाना शुरू किया था। शौकीन तबियत का बाबू था। सिगरेट खूब पीता था। जेब में रखे हुए रूमाल से इत्र की तेज खुशबू बराबर आती रहती थी। मोड़ के पान वाले से सांठ-गांठ कर रामी ने उसे मरवा दिया। वह आदमी हर रोज शाम को रामी के यहाँ आने से पहले उस दूकान पर पान खाता था। उस दिन पान में न जाने ऐसी कौन सी चीज खिला दी कि डगमगाते हुए कदमों से वह रामी के कमरे में घुसा और बिस्तरे तक पहुँचने के पहले ही औंधे मुँह गिर पड़ा। फिर आधी रात को वही पानवाला और रामी—

रामी? ओफ, उसकी याद आते ही आज भी सारे शरीर में सिहरन होती है। भोला चेहरा, नाटा कद और चंचल—सीता की उससे ही सबसे ज्यादा दोस्ती थी। रामी थी भी बहुत हँसमुख, बात-बात में हँसती थी—उसके पेट में इतनी लम्बी दाढ़ी—

रामी को दस साल की सजा हुई थी।

उस दिन से सन्ध्या होते ही सीता का बदन भारी हो जाता था। प्रायः छः महीने तक तो उस मकान में कोई आया ही नहीं। जितने दिन मामला चला, उतने दिन गली के मोड़ पर पुलिस बराबर बैठी रही।

लेकिन गौरा बहुत ज्यादा नहीं घबड़ायी थी। सिर्फ कहती—

'यह मकान छोड़ना होगा। सारे शहर में इस मकान की बदनामी हो गयी है।'

'तुम्हें डर नहीं लगता, गौरा मौसी?'

'डर?' फर्श पर पान की पीक थूकते हुये गौरा कहती—'थू। अपने पैंतालीस वर्ष के जीवन में इसे लेकर कम-से-कम दस खून देखे हैं।'

और अन्त में गौरा ने वह मकान नहीं छोड़ा। सिर्फ जिस कमरे में रामी रहती थी, उसमें सफेदी करा दी।

पूता अक्सर उससे मिलने आती थी। सीता कहती, 'मां मुझे अच्छा नहीं लगता। यहाँ से ले चलो न।'

प्यार से पूता उसके सिर पर हाथ फेरती, छाती से चिपटा लेती। कहती, 'ले जाऊँगी री, जरूर ले चलूँगी। तेरी शादी करूँगी।'

शादी होगी? पहले दिन तो यह सुन कर सीता चौंक पड़ी थी। 'तुम्हारा क्या दिमाग खराब हो गया है, माँ? हमारी कहीं शादी होती है, वेश्याओं की लड़कियों की?'

वेश्याओं की लड़कियों की! पूता की आँखें लाल हो गयी थीं और फिर उसकी दृष्टि धुँधली हो गयी थी।

'होती है या नहीं, यह तो नहीं जानती। लेकिन हाँ, मैं तेरी शादी करके ही रहूँगी, देख लेना।' धीरे-धीरे पूता ने बहुत दृढ़ता के साथ कहा था।

जिस दिन से पूता ने दूसरों के यहाँ महरी का काम करना शुरू

किया था, उस दिन से ही उसके सिर पर यह भूत सवार हो गया था। घर-गृहस्थी का स्वरूप उसने नजदीक से देखा और जितना ही देखा, उतना ही अधिक उसके मन में इस जीवन के प्रति दिन-ब दिन मोह बढ़ता गया। एक छोटा-सा साफ सुथरा मकान—ऐसा ही यदि उसका मकान होता! यहाँ भी कलह है, लड़ाई-झगड़े हैं, नीचता भी है—लेकिन इन सब के बावजूद है एक अकथनीय माधुर्य, परिपूर्ण शुचिता और श्री। ऐसा जीवन पूता को कभी नहीं मिला और न अब मिलेगा ही, पर सीता को तो मिले। लेकिन कैसे? किस प्रकार वह इस पंकज को पूजा की वेदी पर पहुँचा दे। चाहे जैसे भी हो, कोई-न-कोई रास्ता तो निकालना ही होगा, तबतक सीता गैस्टिन-बैस्टिन रोड की गली में ही रहे।

रामी के खाली कमरे में जो नयी युवती आयी, उसका नाम पाली था। इस शहर में आये हुए उसे अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। यही कोई चार वर्ष।

'सिर्फ चार साल?'

'तुम कहती हो, सिर्फ चार साल। मुझे तो ऐसा लगता है जैसे एक युग बीत गया।' कहते-कहते पाली रो पड़ी। रोते-रोते उसने अपनी कहानी सुनायी; गाँव की बाल विधवा, अवांछित मातृत्व की संभावना, कलंक के भय से इस शहर में भाग आना।

'फिर, इसके बाद, इसके बाद?'—उत्सुकता से सीता ने पूछा।

पाली ने फीकी हँसी हँसते हुये कहा—'इसके बाद और कुछ नहीं।'

कई महीने पहले लाली तीर्थ करने गयी थी, अब तीन चार महीने बाद कंकाल जैसी लौटी है।

'अरी लाली, तुझे क्या हुआ था?'

'यह पूछो कि क्या नहीं हुआ था? टायफायड, मलेरिया, निमोनिया, और भी न जाने क्या-क्या।'

'तुम्हारा चेहरा तो बिलकुल पीला पड़ गया है। हड्डियाँ निकल आयी हैं।'

लाली ने अपना माथा ठोका। बोली, 'जिन्दा लौट आयी हूँ, यही बहुत समझो। ईश्वर की कृपा।'

पर पाली को लाली की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। सीता से बोली, 'तुमने उस रांड की गप्पों पर विश्वास कर लिया? बीमार नहीं, खाक थी। उसके जरूर गर्भ रह गया था, उसे ही गिरा कर आयी है। और अगर गर्भ नहीं गिराया है, तो उसके लड़का हुआ होगा—उसे ही मार कर लौटी है।'

सीता यह सुन कर डर से काँप गयी। रुँधे हुए स्वर में उसने पूछा, 'तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ?'

पाली बहुत देर तक चुप रही। जैसे उसने कुछ सुना ही न हो, ऐसा बहाना कर वह सामने वाले मकान की छत की ओर देखती रही। दूसरी बार प्रश्न करने पर जरा मुस्कुराते हुए कहा—'चेहरा देख कर ही मैं जान गयी। मुझे भी तो ऐसा हुआ था।'

'तुम्हारे लड़का हुआ था ?' उत्तेजित आवाज में प्रायः चीत्कार करते हुए सीता ने पूछा।

पैरों के नाखून से सीमेंट के फर्श को रगड़ते हुए पाली ने जवाब दिया—'हुआ था।'

'उसका तुमने क्या किया ? क्या नदी में बहा दिया ?'

'नहीं।' बहुत धीमी आवाज में बिना काँपते हुए उसने कहा 'गला घोंट दिया था।'

काफी देर तक दोनों चुप रहीं। फिर शायद पाली ही जोर से हँस पड़ी थी। 'सीता, तेरा दिल अभी कच्चा है। तू हमारी इस दुनिया में फिट नहीं बैठती, गृहस्थी में तुम बहुत अच्छी रहतीं। वहाँ घूँघट काढ़े घर के काम-काज करतीं।'

लाली से उसे ऐसी नफरत हुई कि तीन दिन तक सीता ने उससे बात नहीं की। यह दुबली-पतली मरियल युवती क्या अपने सद्यजात शिशु को नदी में डुबा कर आयी है ?

विश्वास नहीं होता। पाली ने कहा था, कोई भी वेश्या लड़का नहीं चाहती, इसीलिए मार डाला। यदि लड़के के जगह लड़की हुयी होती, तो फिर देखती, अपनी गोद में लिए हँसती हुई लाली यहाँ आती। फिर बीमारी का झूठा बहाना नहीं बनाना पड़ता।

लंबी-लंबी जुल्फों वाले इस व्यक्ति की दोस्ती पाली से थी। यह व्यक्ति प्रायः रोज शाम को पाली का अतिथि होता था। पाली

नाचना नहीं जानती थी, इसलिए बीच-बीच में सीता की बुलाहट होती थी। इस व्यक्ति ने एक दिन घुंघरू बँधे हुए सीता के पैरों को पकड़ लिया था। कहा था, 'तुम्हारे पैर इतने हल्के हैं, तुम थियेटर में क्यों नहीं नाचतीं ?'

'थियेटर में ?' विस्फारित आँखों से सीता ने पूछा था।

'हाँ !' डायना थियेटर में वह डान्स मास्टर है। शीघ्र ही नाट्यकार होने वाला है। कभी-कभी अपने साथ एक नोटबुक भी लाता था जिसमें उसका लिखा हुआ नाटक था। सुभद्रा हरण या कुछ ऐसा ही नाटक का नाम था। पाली के कमरे में इस नाटक का रिहर्सल होता था। वह व्यक्ति एक-एक लाइन पढ़कर सुनाता, फिर शराब का एक घूंट पीता और सीता की ओर देखते हुए उसके अभिनय कौशल की प्रशंसा करता। कहता, 'इस नाटक में हीरोइन का पार्ट तुम्हारा पक्का रहा। मैंने बांकेमल सेठ से तुम्हारे लिए कह दिया है। थियेटर में लेकिन सीता-फीता जैसा नाम नहीं चलेगा। वहाँ तुम्हारा नाम मिस रोज रखा जायगा।'

मिस रोज ? सीता के कपोल लाल हो जाते थे, पाली के नए खरीदे हुये तकिये पर सिर रख कर वह हँसते-हँसते लोट पोट हो जाती थी।

सीता के डायना थियेटर में हीरोइन की भूमिका के मनसूबे टूट गये। पूता ने आकर सब उलट-पलट कर दिया।

एक दिन दोपहर को वह एकाएक आयी और बोली, 'चलो, मेरे साथ।'

'कहाँ मां ?' रात्रि जागरण के बाद सारे शरीर में आलस्य और शिथिलता थी, आँखें झपी जा रही थीं। जम्हाई लेते हुए उसने पूछा, 'कहाँ मां ?'

पूता ने उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए कहा, 'जाओ, अपना मुँह-हाथ अच्छी तरह से धो लो। एक जगह तुम्हारी शादी की बात पक्की की है, जल्दी से चटपट तैयार हो जाओ।'

उस दिन श्रृंगार करते हुए सीता का हाथ बार-बार काँप गया। कोई भी साड़ी पसन्द नहीं आती थी। छपी हुई एक साड़ी पसन्द भी आई, तो ब्लाउज के साथ वह मैच नहीं करती थी। चोटी भी उसने कितनी बार और कितनी तरह से की।

सजधज कर जब वह पूता के सामने आई, तो उसकी ओर गौर से देखते हुए पूता चीख उठी, 'यह तूने कैसा श्रृंगार किया है सीता ?'

डर से सीता का मुँह सूख गया—'क्या मां ?'

'ऐसा श्रृंगार क्यों किया है ? भले आदमी के घर जा रही है या वेश्यावृत्ति करने ? उतार, उतार, जल्दी से ये चटक-मटक के कपड़े उतार दे, कोई लाल किनार की धोती पहन ले। और गहने पहनने की कोई जरूरत नहीं। हाँ, ये होठों की लाली और गालों पर पुता हुआ रंग भी पोंछ दे—समझी।'

भले आदमियों के यहाँ काम करते-करते पूता की रुचि भी बहुत कुछ भले आदमियों जैसी ही हो गयी थी।

सीता तो जैसे धरती में गड़ गयी। कंपित हाथों से उसने

वह सब कुछ किया जो पूता ने कहा था। उसने अपना मुँह फिर से धोया। माथे पर लगाई हुई बिंदी को पोंछ डाला और मामूली ढंग से चोटी की।

पूता ने खुश होकर कहा, 'अब तू बहुत अच्छी लगती है। मेरी बेटी मानो साक्षात् लक्ष्मी हो।'

मकान से बाहर निकलते ऐसा लगा जैसे पैर जकड़ गये हों, प्रेमी की तरह उसे छोड़ कर नहीं जाना चाहते। गाड़ीवान गफूर पान की दूकान पर खड़ा था। उसने बोली कसी। दूसरे आदमी ने सीटी बजाई और स्पेशल सैलून के नाई ने आँखें मारीं। दूसरा कोई दिन होता, तो क्षण भर के लिए सीता खड़ी होती, जरा हँसती भी। पर आज उसने नजर उठा कर देखा तक नहीं। एक तो माँ साथ में थी और फिर आज सीता भले आदमियों की बिरादरी में शामिल होने जा रही थी। अपना चाल चलन भी तो वैसा ही बनाना पड़ेगा। आज तो मृगया नहीं है। आँखों के कटाक्ष और इंगितपूर्ण अंग-प्रदर्शन, इन सब को पीछे छोड़ जाना होगा, इसी गैस्टिन वैस्टिन रोड की गली में।

पूता सारे रास्ते सीता को तोते की तरह रटाती हुई ले गयी। जिम्मेदारी तो कम नहीं, मामूली बोझ नहीं! अपने मंत्रबल से वह सीता को विशुद्ध कर देगी, स्पर्शमणि छुआ कर लोहे को सोना बना देगी।

धर्मराज रोड की एक छोटी-सी गली में 'समाज सुधार समिति' का दफ्तर है। मेज के सामने बैठे हुए मंत्री महोदय कुछ लिख रहे थे। सौम्य मूर्त्ति, काली-सफेद दाढ़ी में छिपी हुई अनिश्चित उम्र।

माँ ने नमस्कार किया, माँ की देखा-देखी सीता ने भी झुक कर प्रणाम किया।

पूता ने कहा, 'मेरी लड़की है। इसी के बारे में मैंने आपसे कहा था।'

तीक्ष्ण दृष्टि से एक बार सीता को सिर से पैर तक अच्छी तरह देखने के बाद मंत्री महोदय ने गंभीर आवाज में कहा, 'हूँ।' फिर बहुत देर तक न जाने क्या सोचते रहे। कमरे में एकदम शांति थी। उनके पैरों के पास बैठी सीता को उनकी जेब घड़ी की टिक-टिक आवाज के अलावा और कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था।

अचानक कुछ देर बाद मंत्री महोदय कुर्सी पर सीधे बैठ गये। एक बार सीता, फिर उसकी मां की ओर देखते हुए बोले, 'तुम्हारे उद्देश्य के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। ईश्वर की कृपा हुई तो सब ठीक हो जायगा। लेकिन—'

पूता बोली, 'यदि कोई उदार लड़का मिले, तो ..'

अपनी लंबी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए मंत्री महोदय ने कहा, 'मिलेगा। कई अच्छे लड़के मेरे हाथ में हैं। ऐसी कई शादियाँ हमने करायी भी हैं। सिर्फ मुँह जबानी ही हम समाज सुधार नहीं करते, बल्कि यथार्थ रूप में करते हैं। लेकिन—'

'लेकिन क्या ?'

'कुछ नहीं, थोड़ी सी झूठ और चालाकी से काम लेना होगा। वेश्या के गर्भ से पैदा हुई लड़की से शादी करने के लिये कोई भी युवक आसानी से राजी नहीं होगा। इसलिये अच्छा'— चश्मा उतार कर जेब में रखते हुए मंत्री ने कहा, 'इसलिये यह अच्छा होगा कि मैं उनसे यह कहूँ—'

धीरे-धीरे मंत्री महोदय ने अपनी योजना बतायी। सीता कुछ दिनों तक उनकी समिति द्वारा परिचालित महिला आश्रम में रहेगी। बाहर से आयी है, बदमाश पकड़ ले गये थे। उन्होंने ही इसका सर्वनाश किया। स्वजन परित्यक्ता कुमारी—कुछ ऐसी ही विश्वास योग्य एक कहानी बनानी पड़ेगी।

आश्रम में ज्यादा दिन नहीं रहना पड़ा। मां रोज आ कर मिल जाती थी, और आते थे 'समाज सुधार समिति' के वही अनुभवी मंत्री गिरिजा शंकर। आश्रम में और भी कई युवतियाँ थीं किन्तु, उनसे अच्छी तरह मेल-मिलाप नहीं हुआ। संकोच के मारे सीता इधर-उधर मुँह छिपाती फिरती थी। और यहाँ की युवतियाँ भी ऐसी नहीं थीं जो अपनी ओर से मेल-जोल बढ़ातीं। सबकी सब जैसे ठंढी, गूँगी और स्थिर थीं। वे सिर्फ एक दूसरे को देखतीं, बात न करतीं।

एक दिन एक युवक आ कर देख भी गया। बाद में मालूम हुआ कि उसने सीता को पसन्द भी कर लिया है। जब वह देखने

आया था, तब सीता उसके मुँह की ओर ताकने का साहस नहीं कर सकी थी। किसी भी तरह उसके चेहरे को याद नहीं कर सकी। बाद में सुना, उसका नाम रमेश है। पास ही के शहर में डाक्टर है, विधुर है सीता की बदकिस्मती की कल्पित कहानी उसने सुनी। शादी में उसे कोई आपत्ति न थी।

शादी का वह निर्दिष्ट दिन भी आ गया। सावन का महीना था। उस रोज दिन भर पानी बरसता रहा। चार बजे से ही चारों ओर अंधकार छा गया। आश्रम की गली में घुटनों-घुटनों तक पानी भर गया। ऐसे भी दिन भला किसी की शादी होती है! सड़क पर रोशनी तक नहीं जली। ऐसे आंधी तूफान में तो लोग लाश को भी घर में ही पड़ी रहने देते हैं, फूंकने के लिये मरघट नहीं ले जाते।

सुबह से ही बहुत ठंढी हवा चल रही थी, इसलिये सीता ने उस दिन नहाया तक नहीं। लेकिन तो भी गली के मोड़ पर शाम के वक्त एक छकड़ा गाड़ी नजर आयी और वह ठीक आश्रम के दरवाजे पर ही आकर रुकी।

दरवाजा खोल कर सबसे पहले समाज सुधार समिति के मंत्री गिरिजा शंकर उतरे। उनके पीछे पीछे और भी कई आदमी उतरे और अपने को पानी से बचाते हुए चबूतरे पर चढ़ गये।

क्या यही दूल्हा है? इसमें संदेह भी क्या? सिर पर मुकुट है। चेहरे पर पसीने की दो-चार बूंदें भी हैं। उन्हें पोंछते हुए माथे पर लगा चंदन भी पुँछ गया।

फिर धीरे-धीरे रोशनी भी जली, बाजे भी बजे। आश्रम की

युवतियों ने गीत गाये। गिरिजा शंकर अपने साथ पंडित ले आये थे, उसने मंत्र पढ़े और शादी हो गयी।

सीता का नया जीवन शुरू हुआ।

दूसरे दिन पूता आई थी। दूर से ही उसने रमेश को देखा, क्योंकि रमेश उसे नहीं जानता था। सीता को उसकी नयी वेष-भूषा में पूता कितनी देर तक एकटक देखती रही, इसका कुछ ठीक नहीं। सीता की मांग में सिन्दूर है, यह सफलता सिर्फ सीता की अकेली नहीं, बल्कि पूता की भी है। अपनी जिन्दगी भर की कमाई देकर पूता उस स्वप्न को सफल कर रही है जो उसने जीवन भर देखा था। सीता का उसने भद्र समाज में दाखिला करवाया है।

'अब मां तुम क्या करोगी?'

'मैं?' पूता ने हँस कर कहा, 'मेरे लिये तुम कतई [illegible] न करो। मेरी जिन्दगी तो किसी न किसा तरह कट ही जायगी। बल्कि मैं तो अब निश्चिन्त हो गयी। जब तक शरीर चलता है, मेहनत-मजूरी करके खाऊँगी, और फिर तीर्थ करने—'

सीता की आँखों में आँसू आ गये। पूता के पास कुछ भी नहीं रहा, बेटी के लिये सब कुछ खर्च कर दिया।

सीता को आशंका थी, शायद रमेश उससे जिरह करेगा, उसके अतीत जीवन की रत्ती-रत्ती बात जानना चाहेगा। बदमाश उसे पकड़ ले गये थे और उन्होंने उसकी लाज लूटी थी—इस कहानी का प्रचार किया गया था। पर सीता को हर समय यह कहानी अच्छी तरह याद नहीं रहती थी। कुछ कहने के बदले अगर और

कुछ कह बैठी, तो फिर कहानी में तारतम्य नहीं रहेगा।

पर रमेश की बात सुन कर वह निश्चिन्त हो गयी।

'मैंने सब सुना है,'--उसका एक हाथ अपने हाथ में लेते हुए रमेश ने कहा—'तुम्हारी बदकिस्मती, तुम्हारी मुसीबतों के बारे में सब कुछ सुन चुका हूँ। इसके लिये तुम्हें दुखी होने की कोई जरूरत नहीं। बल्कि यह हमारे लिये दुख का विषय है, हमारे समाज के लिये यह शर्म की बात है कि वह तुम्हारी रक्षा नहीं कर सका, तुम्हें नहीं बचा सका।'

रमेश का हाथ कुछ गर्म था, लेकिन सीता का हाथ तो जैसे एकदम वर्फ हो गया। जीवन में पुरुष का स्पर्श इससे पहले भी बहुत बार मिला है—अनेक पुरुषों का स्पर्श मिला है—पर आज के इस स्पर्श में भरोसा और आश्वासन है और रमेश के इस बलिष्ठ स्पर्श की किसी भी अनुभूति से तुलना नहीं हो सकती। यह तो कीचड़ से निकल कर साफ जल में स्नान करने के समान है।

रमेश ने फिर कहा—'मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। तुम्हारा अतीत खत्म हो गया? वर्त्तमान और भविष्य में सिर्फ कोई त्रुटि नहीं होनी चाहिए, इतना ही बहुत है।'

उस छोटे से शहर में उनके दाम्पत्य जीवन में तीसरा और कोई नहीं था। रमेश काम-काजी व्यक्ति था। सवेरे जो निकलता, तो दोपहर को लौटता, खा-पीकर फिर निकल जाता। फिर शाम को मुलाकात होती। संध्या का समय प्रायः एक साथ बीतता।

बीच-बीच में कुछ आशंका होती। क्या जाने, कहीं कोई

ऐसी गलती न हो जाये कि उसका असली परिचय पारे की तरह स्पष्ट हो उठे।

लेकिन नहीं; ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। रमेश काफी व्यस्त रहता, छोटी-मोटी बातों पर गौर करने की उसे फुर्सत ही कहाँ। काम के बीच में नाम के लिए एकाध बार घर आ जाता, जरा हँस कर या हँसा कर फिर बाहर चला जाता।

दो महीने बड़े आराम से बीते।

सीता व्यर्थ ही डरती थी; अमंगल की जरा सी भी छाया नहीं पड़ी।

पर न जाने तीन दिन पहले यह लंबी-लंबी जुल्फों वाला व्यक्ति वहाँ कैसे और कहाँ से टपक पड़ा। कुत्ते की तरह सूँघता-सूँघता यहाँ आ पहुँचा।

रमेश का हाथ पकड़े हुए जंगल के रास्ते वह नदी के किनारे घूमने गयी थी। नंगे पैर बालू पर उसने खूब दौड़ लगाई थी। थोड़ी-थोड़ी दूर पर कंटीले पेड़ थे, कांटों में उसका आँचल उलझ गया। रमेश ने आँचल निकाल कर एक लाल फूल उसकी चोटी में लगा दिया था।

फिर दोनों धीरे-धीरे पगडंडी के सहारे लौट आये। रमेश उसे घर के दरवाजे तक पहुँचा कर अपने दवाखाने चला गया।

दरवाजा खोल कर दबे पांवों चोर की तरह यह लंबी-लंबी जुल्फों वाला व्यक्ति उसके पीछे-पीछे आया था। पैरों की आवाज सुनाई नहीं पड़ी। सीढ़ी पर ऊपर चढ़ते हुए भी सीता को यह मालूम नहीं हो पाया था कि उसके पीछे पीछे कोई आदमी चला

आ रहा है। तीसरी सीढ़ी पर पैर रखते ही जैसे किसी ने आँचल पकड़ कर खींचा। सीता चौंक कर खड़ी हो गयी। भयभीत और चकित, मुँह से एक हल्की सी चीख आधी निकल कर ही रह गयी। प्रायः अंधकार में वह एकदम सामने आ कर खड़ा हो गया, उसकी घनी और लंबी भौहों के नीचे लाल आँखें चमक रही थीं, आग की लपटों की तरह।

सीता के होठों पर एक विचित्र हँसी खेल गयी।

'क्या चाहते हो?'

उसके आँचल का छोर उस वक्त भी उस व्यक्ति की मुट्ठी में था। बोला, 'तुमको। तुम्हें वापस ले जाने के लिये आया हूँ।'

'वापस ले जाने के लिये?' सीता की आवाज काँप गयी। उसे खुद अपनी आवाज अपरिचित जैसी गली।

'वापस ले जाने के लिये।' निष्ठुर निश्चित आवाज में उस व्यक्ति ने कहा। और फिर उसने सीता को नीचे से ऊपर तक देखा। उसकी मांग में सिंदूर की रेखा देखी, हाथों में चूड़ियाँ, पैरों में बिछुए—सुहाग के चिन्ह। व्यंग्य की तरह हँस पड़ा। 'वाह सुन्दरी, तुमने तो खूब रंग बदला है। पर मैं तुम्हें नहीं भूला। पोशाक बदलने पर भी अंतर नहीं बदला जा सकता।

'तुम्हें वापस चलना ही होगा।'

'कहाँ?'

'डायना थियेटर? तुम्हें हीरोइन बनाने की बात थी, याद नहीं? तुम भूल गयीं, पर मैं नहीं भूला। बहुत परेशानी और

खोज के बाद अब जाकर कहीं तुम्हारा सुराग मिला है।'

सीता की इच्छा हुई कि रो पड़े, उस आदमी के पैर पकड़ ले। नये जीवन की वह परीक्षा कर रही है, आदर्श घर-गृहस्थी, उदार और देवता तुल्य पति—

पर उसके मुँह से आवाज नहीं निकली, एक शब्द भी नहीं कह सकी। उस व्यक्ति की आँखें लाल थीं। पर आँखों की यह लाली सिर्फ नशे की वजह से ही नहीं, अनुराग से भी थी।

'तुम उड़ कर यहाँ चली आयीं और तुमने अपना घर भी बसा लिया। यह तुम्हारा स्थान नहीं है। सच बोलो सीता, तुम क्या स्वयं अपने साथ आँख मिचौनी नहीं खेल रही? इन सोने की बेड़ियों में क्या तुम्हें बेचैनी अनुभव नहीं होती? जरा अपने दिल पर हाथ रख कर कहो, घुँघरू बाँध कर नाचने के लिये क्या तुम्हारे पैर चंचल नहीं होते? गैस्टिन-बैस्टिन रोड की गली की तुम युवती हो...'

थियेटर के लिए यह व्यक्ति ड्रामा लिखता है। जैसा लिखता है, वैसे ही नाटकीय ढंग से बोलता भी है।

सीता अब और कुछ ज्यादा नहीं सुनना चाहती। पैरों के पास कोई चीज पड़ी थी, झुक कर उसे उठाया और उस व्यक्ति के मुँह पर जोर से मारी।

उस व्यक्ति के माथे से खून की दो-चार बूंदें टपक पड़ीं। एक हाथ से चोट के स्थान को दबाते हुए बोला, 'ठीक नहीं लगा, निशाना चूक गया। अभी तुम्हारे हाथ कच्चे हैं।'

गुस्से में कांपते हुए सीता ने तेज आवाज में कहा, 'जा-ओ।'

'जाता हूँ। लेकिन कल सुबह फिर आऊँगा।'

दूसरे दिन सुबह सीता बहुत उत्सुक रही। क्षण-क्षण में उसका मुँह पीला पड़ जाता था। रमेश दवाखाने चला गया था। महरी भी बर्तन माँज कर चली गयी थी। पर वह व्यक्ति नहीं आया। डर और आशंका से सीता के दिल की धड़कन तेजी से चलने लगी। कौन जाने, शायद उस आदमी का इरादा ही बदल गया हो। शायद वापस चला गया हो। पर जो इतनी दूर से उसे खोजता हुआ आया है, वह क्या इतनी आसानी से वापस चला जायेगा?

नहाना-धोना, यहाँ तक कि खाना-पीना भी खत्म हो गया। रमेश प्रायः डेढ़-दो बजे आया। जल्दी से खा-पीकर वह सो गया। दोपहर को खा-पीकर रमेश कुछ देर सोता है। और दिनों की तरह सीता आज रमेश के पास नहीं बैठी। आज तो उसकी प्रतीक्षा का दिन था। कितनी देर में राहु फिर उसे ग्रसने आयेगा, क्या मालूम?

दोपहर भी बीत गया। शाम होने को आयी। वह व्यक्ति उस समय तक जब नहीं आया, तो सीता ने आराम की साँस ली। शायद बुरे ग्रह कट गये।

चाय पी कर रमेश बाहर जाने के लिए तैयार हो रहा था। सीता खिड़की के पास खड़ी होकर चोटी कर रही थी, कुछ गुन-गुना भी रही थी। ऐसे ही वक्त—

लंबी-लंबी जुल्फें, दाढ़ी-मूंछ सफाचट, गले में सोने की चेन, मलमल का कढ़ा हुआ कुर्त्ता, बटन खुले हुए।

पाली के पास आने वाला वही व्यक्ति। गैस्टिन-बैस्टिन रोड की गली में लौटाकर ले जाने वाली नाव का खेवैया।

सीढ़ी पर जूतों की आवाज सुनाई दी। रमेश ऊपर आ रहा था। सीता ने अनुभव किया कि उसके हाथ-पैर ठंढे होते जा रहे थे। रमेश को सब मालूम हो गया है। जान गया है कि सीता निर्दोष नहीं। वह पेशा करने वाली थी। सिर्फ एक दुर्घटना के कारण उसके शरीर की पवित्रता नष्ट नहीं हुई, बल्कि नष्ट हुई है चाँदी के टुकड़ों के विनिमय में बारम्बार आत्मदान के कारण।

जूतों की आवाज ऊपर आ रही थी। अभी रमेश कमरे में घुसेगा। बिछौने पर औंधे मुँह सीता लेट गई, तकिये में अपना मुँह छिपा लिया। हाथ-पैरों में जान नहीं, मानो निर्जीव हों।

कितनी देर तक वह ऐसे पड़ी रही, इसका उसे कुछ ख्याल नहीं। अचानक आँखें मलते हुए उसने देखा कि रमेश उसके सिरहाने बैठा हुआ है। तकिये को रमेश ने अपनी गोद में रख रखा है और धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेर रहा है।

'डर गयी थीं?' रमेश ने बहुत स्नेह से पूछा।

आँखें मलते हुए सीता ने फिर एक बार देखा। इतने सुख का विश्वास नहीं होता। अब तक वह इस कमरे में ही है, रमेश ने अभी तक उसे निकाला नहीं?

'क्या हुआ था?' रमेश ने फिर पूछा।

'कुछ नहीं,' दबी आवाज में सीता ने जवाब दिया, 'चक्कर आ गया था।' फिर डरते-डरते बोली, 'सब सुन लिया?'

रमेश ने धीरे से कहा, 'हाँ, सुन लिया।'

'अब मुझे निकाल बाहर करोगे न?'

'पागल', रमेश ने कहा, 'ऐसे मामूली कारण के लिए मैं अपना बसा-बसाया घर उजाड़ दूँगा! मैं इतना कायर या डरपोक नहीं। जब तुम से शादी की थी, तभी क्या तुम्हें मेरे संस्कारमुक्त मन का परिचय नहीं मिला था?'

सीता को विश्वास नहीं हो रहा था। रुँधे हुए स्वर में बोली, 'हाँ।'

'उसी उदारता को जरा और भी प्रसारित कर दिया। तुमसे तो मैंने बार-बार कहा है, तुम अपने अतीत को भूल जाओ और अपने वर्त्तमान तथा भविष्य का ख्याल रखो।'

रमेश ने और भी न जाने क्या-क्या कहा था। कीचड़ से अपने हाथ ऊपर उठाकर सीता ने सूर्य के प्रकाश की ओर फैला दिये हैं। रमेश उसी कीचड़ में फिर उसे नहीं धकेलेगा।

सुख और खुशी के आवेश में सीता की आँखें मूंद गयीं। रमेश बड़ा है, रमेश ऊँचा है, रमेश महान् है, यह वह जानती थी। पर यह विशालता और महानता इतनी ऊँची और व्यापक है, इसकी तो उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।

'वह आदमी चला गया?'

'चला गया। मैंने उसे विदा कर दिया। तुम शांत हो जाओ, आराम करो।'

उस दिन सीता बहुत देर तक सोयी थी। छाती पर से एक बड़ा बोझ उतर गया था। पति के साथ आँख मिचौनी का खेल आज खत्म हो गया था। महानता के पवित्र स्पर्श से रमेश ने उसकी समस्त ग्लानि को पोंछ दिया था। अब सीता का स्वस्थ और स्वाभाविक जीवन हो गया। पद-पद पर लांछित और तिरस्कृत होने की बिडंबना का अन्त हो गया। अंतिम पीला पत्ता भी गिर गया, अब सिर्फ नये और हरे पत्ते ही हैं।

इस घटना के तीन दिन बाद समाज सुधार समिति के मंत्री महोदय गिरिजा शंकर आये थे। गिरिजा शंकर पहले से कुछ कमजोर हो गए थे, माथे पर चिन्ता की रेखायें भी स्पष्ट थीं। पर आँखों की ज्योति जैसे कुछ और बढ़ गयी थी।

सीता ने उन्हें प्रणाम किया और रमेश ने उनका स्वागत किया। भक्ति-भाव से झुके हुये सीता के सिर पर उन्होंने स्नेह से हाथ फेरा। अपने हाथ लगाये हुए पौधे को बढ़ता हुआ देख कर आत्म-संतोष की भावना से जैसे उनका चेहरा चमक उठा।

बोले, 'इस तरफ कुछ काम था। सोचा कि तुम लोगों से भी मिलता चलूँ। तुम लोगों को देख कर बहुत खुशी हुई।'

रमेश की ओर देख कर बोले, 'तुम्हें अभी कहीं बाहर तो नहीं जाना रमेश? जरा दो-चार बातें करना चाहता था।'

रमेश ने कहा, 'नहीं, बाहर नहीं जाना। आइये।'

वे दोनों कमरे में बैठ गये और सीता रसोई में जाकर तरह-तरह की खाने की चीजें बनाने लगी।

शाम की गाड़ी से गिरिजा शंकर चले गये। जाते समय फिर

आशीर्वाद दे गये—दूधों नहाओ पूतों फलो; कभी तुम्हारा अमंगल न हो।

इसके बाद और भी दो महीने बीत गये। बीच-बीच में मां की याद आते ही दिल उदास हो जाता। पूता कहाँ है ? अब भी क्या वह महरी का ही काम कर रही है ? सीता की इच्छा थी कि मां को मथुरा-वृन्दावन जाने के लिये लिखे। न होगा तो हाथ खर्च के लिये वह उसे पांच-दस रुपया महीना भेज दिया करेगी।

पर इस बीच ही सब कुछ उलट-पलट गया। तीन दिन बीमारी का पता ही न चला। मामूली सा बुखार था, कुछ समझ में ही न आया। सब कुछ क्या और कैसे हो गया, सीता अच्छी तरह समझ भी न पायी। सारी घटना बहुत विचित्र और असंबद्ध सी हुई। जब वह समझी, तब हाथ की चूड़ियाँ उतार देनी पड़ीं, और मांग का सिंदूर पुंछ चुका था। एक अकथनीय सर्वनाश ने उसकी साड़ी के सब रंगों को छीनकर सफेद कर दिया था।

सब हिसाव-किताब देखा गया। रमेश बहुत थोड़ा सा नकद और टूटा-फूटा मकान छोड़कर मरा था।

अब वह क्या करे, स्थिर न कर सकी। कुछ निश्चय करने के पहले ही वह रेल में सवार होकर अपने पुराने शहर में पहुँच गयी।

अपने साथ बहुत ज्यादा सामान नहीं लायी थी। रोज के पहनने के दो-चार कपड़े, हाथ खर्च के लिये थोड़े से रुपये और रमेश का एक फोटो।

महिला आश्रम के गिरिजा शंकर अपने कमरे में बैठे हुए चिट्ठी लिख रहे थे। सीता को आती देख कुछ देर तक स्थिर दृष्टि से

देखते रहे। उसने प्रणाम किया, तो कहा, 'बैठो।'

आश्रम में एक कोठरी उसे दे दी गयी। उस कमरे में उसने रमेश का फोटो टांग दिया। हर रोज उस फोटो की पूजा करती, धूपबत्ती जलाती और ताजे फूलों की माला पहनाती। अगर रमेश जिन्दा रहता, तो उसकी दो-चार खामियाँ भी नज़र आतीं। शरीर त्याग कर सीता के लिए तो वह देवता बन गया।

गिरिजा शंकर ने एक दिन कहा, 'तुम्हारी मां सख्त बीमार हैं सीता, एक दिन उन्हें देख आओ।

एक टूटी-फूटी झोपड़ी में मैले-कुचैले बिछौने पर पूता पड़ी हुई थी। सीता ने पुकारा—'मां।'

अपनी आँखें फाड़कर पूता ने मानो बहुत कष्ट से देखा। 'तू आ गयी बेटी?' सीता के नंगे हाथों पर नजर पड़ते ही पूता की आँखों से आँसू टपक पड़े। धीरे-धीरे सीता की पीठ पर प्यार से हाथ फेरने लगी।

सीता ने निश्चय किया कि वह यहीं रहेगी, कम से-कम जब तक मां की हालत ठीक नहीं हो जाती। आश्रम से उसने अपना सामान वगैरह मंगा लिया।

मन ही मन पूता खुश हुई। 'बेटी, तू यहाँ रहेगी? अच्छा, ठीक है।' पर पूता को मानो कुछ बेचैनी भी हो रही थी। अपना सर्वस्व व्यय कर उसने लड़की को समाज की ऊपरी मंजिल पर पहुँचा दिया था। अब फिर सीता अगर उसके पास यहाँ रहेगी, तो निम्न स्तर पर तो नहीं उतर आयेगी? सारी मुसीबतों, दुखों और कष्टों में पूता को सिर्फ एक मात्र यही तो सांत्वना थी कि

उसकी लड़की नेक थी। विधवा थी तो क्या, लेकिन शरीफ थी, भद्र थी।

शाम को दवा की दो शीशियाँ लिए हुए जो व्यक्ति उस झोपड़ी में आया, उसे देखते ही सीता का अंग-प्रत्यंग ठंढा पड़ गया।

वही लम्बी-लम्बी जुल्फें, दाढ़ी मूंछ सफाचट, गले में सोने की चेन, मलमल का कढ़ा हुआ कुर्त्ता, बटन खुले हुए।

उसकी तलाश करता हुआ यह शनि फिर यहाँ आ पहुँचा है, रास्ता सूंघता-सूंघता।

यह भी जाहिर हो गया कि वह व्यक्ति भी कम विस्मित नहीं हुआ। तिरछी नजरों से एक बार सीता को देख कर वह पूता के पास जा बैठा। दवा की दोनों शीशियाँ सिरहाने रख दीं। फिर उसने दवा खाने की विधि धीरे-धीरे पूता को समझायी।

पूता ने कहा, 'जो कुछ बताना हो, मेरी लड़की को बता दो। अब वह आ गयी है।' कुछ रुक कर दुखी होते हुए कहा, 'जो तकदीर ही खोटी न होती, तो फिर यहाँ क्यों आना पड़ता।'

सीता को ऐसा लगा जैसे उस व्यक्ति के चेहरे पर एक विचित्र प्रकार की कुटिल हँसी खेल गयी, जैसे अन्त में वह बाजी जीत ही गया। अर्थात् सीता को चारों ओर घूम फिर कर आखिर गैस्टिन बैस्टिन रोड की गली में ही आना पड़ा न।

पूता ने फिर कहा, 'मेरी इस बीमारी में गिरधारी ही मेरी देखभाल और सेवा कर रहा है। गिरधारी बहुत अच्छा आदमी है।'

इस बीच सीता संभल गयी थी। उसने निश्चय कर लिया

था। इस व्यक्ति की गलत धारणा दूर करनी हीं होगी। यह उसे अच्छी तरह समझा देना होगा कि वह नीचे नहीं आयी है। इस भूल का संशोधन बहुत जरूरी है। धीरे से वह वहाँ से उठ कर चल दी।

पर भाग कर जायगी कहाँ? गिरधारी उसके पीछे पड़ा हुआ था। दवा का ग्लास धोने यदि वह नल पर जाती, तो गिरधारी भी छाया की तरह उसके पीछे-पीछे जाता। सीता के उठने-बैठने, चलने-फिरने पर एक चतुर शिकारी की तरह हमेशा उसकी तेज नजर पीछा करती रहती।

यह व्यक्ति क्या चाहता है? क्या उसे अब भी आशा है कि सीता डायना थियेटर में जायेगी? उसके लिखे हुए नाटक की हीरोइन बनेगी?

पाली ने कहा, 'हाँ, वह यही चाहता है।' सीता के आने की खबर सुन कर पाली उससे मिलने आयी थी। सीता से सारी बातें सुन कर बोली, 'हाँ, वह बिल्कुल कुत्ते की तरह तेरे पीछे पड़ा हुआ है। तुझे थियेटर में नचायेगा, यह झांसा-पट्टी देकर उसने थियेटर के मालिक से काफी रुपया जो हड़प लिया है।'

'रुपया हड़प लिया है?' सीता ने आश्चर्य पूछा।

'हाँ, हड़प लिया है।' पाली ने कहा, 'डायना थियेटर के मालिक सेठ बांकेमल को मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ। उसका स्वभाव ही ऐसा है। जहां उसकी पसन्द की चीज मिले, वहाँ वह थैलियों का मुंह खोल देता है, पीछे नहीं हटता। पर चीज मिलनी चाहिए।'

'तो ? इसके वाद ?'

'इसके बाद तुम तो चली गयीं। तुम्हारे नाम पर सेठ से लिया हुआ रुपया उसने सब उड़ा दिया। या तो वह तुम्हें हाजिर करे, या रुपया वापस करे। जब दोनों में से एक भी न कर सका, तो नौकरी जाने-जाने को हो गयी। बस, तब से तेरी तलाश में निकला है।...सुनो भई, जरा होशियार रहना।'

पूता की तबियत सुधर रही थी। सीता उसी दिन आश्रम चली आयी।

राहु वहाँ भी आ पहुँचा।

शाम को उसी वक्त सीता ने रमेश के फोटो पर माला चढ़ाई थी। धूप जलाने जा रही थी। उसी समय खिड़की पर किसी की छाया नजर आयी। छाया गिरधारी की थी। रेलिंगों को पकड़े अपलक दृष्टि से वह सीता की ओर देख रहा था।

सीता के पैर एक बार काँप गये। चाहती तो वह फौरन खिड़की बन्द कर सकती थी, अथवा दरबान को बुला कर उस व्यक्ति को पकड़वा सकती थी। पर इससे क्या छुटकारा मिलेगा ? इससे तो अच्छा है कि आज हमेशा के लिए फैसला हो जाये।

'क्या चाहते हो ?'—बहुत कड़ी आवाज में सीता ने पूछा।

गिरधारी ने एक बार चारों ओर देखा—'दरवाजा खोलो, बताता हूँ।'

आज सीता निडर हो गयी थी। न जाने कहाँ से आज उसमें एक नया साहस आ गया था। दरवाजा खोल कर गिरधारी को भीतर बुला लिया।

धूप की गन्ध और दीये के प्रकाश से कमरे में एक शांत वातावरण था। उसी कमरे में दोनों आमने-सामने खड़े हो गये।

'अब बोलो, क्या चाहते हो ?'

'मेरे साथ चलो।' पुरानी बात को ही गिरधारी ने दुहराया, निर्विकार रूप से, स्वाभाविक आवाज में। जरा भी विचलित नहीं हुआ।

और यह सुनने के साथ-ही-साथ मानो सीता फट पड़ी। 'तुम्हें शर्म नहीं आती, जंगली जानवर ? तुम किसके सामने खड़े होकर बातें कर रहे हो, तुम यह नहीं जानते ?'

लेकिन गिरधारी हँस रहा था। उस पर कोई असर नहीं हुआ था। 'किसके सामने ?' उसने पूछा।

सीता उसे जोर से खींचती हुई रमेश के 'फोटो' के सामने ले आयी—'आँखें खोल कर देखो, ये मेरे पति हैं। आज नहीं हैं, पर मैं उनकी ही हूँ। वे देवता थे, उन्होंने मेरा उद्धार किया था। वे महान् थे, मेरे बारे में सब कुछ जान कर भी उन्होंने अपने पास मुझे स्थान देने में जरा भी संकोच नहीं किया। और तुम—'

बेशर्म की तरह हँसते हुए गिरधारी ने पूछा—'और मैं क्या हूँ ?'

'तुम हीन, नीच मोरी के कीड़े, पतित हो तुम। रुपया लेकर तुम मुझे थियेटर के मालिक के हाथों बेच देना चाहते थे, और अब भी चाहते हो।'

'चाहता हूँ।' बिना किसी हिचकिचाहट के गिरधारी ने

कहा, 'अब भी चाहता हूँ। रुपया भी मैंने लिया है, यह सच है। पर रुपया लेने के मामले में क्या मैं अकेला हूँ? तुम्हारे पति—'

'उन्होंने भी रुपया खाया था?' सीता चीत्कार कर उठी।

'हाँ, खाया था' शांत स्वर में गिरधारी ने कहा, 'उत्तेजित मत होओ, उन्होंने भी रुपये के ही लालच में तुमसे शादी की थी। नया डाक्टर था, पास में पूँजी नहीं, दहेज की रकम से दवाखाना खोला—तुम्हारी मां के रुपयों से; एक-एक धेला जोड़ कर अपने खून-पसीने की कमाई से तुम्हारी मां ने जो रकम जोड़ी थी, उससे। तब उनका ख्याल था कि तुम भले घर की लड़की हो, बदकिस्मती से सिर्फ एक ही बार लांछिता हुई हो। फिर जब उन्हें पता चला कि तुम वह नहीं हो, तुम्हारा जन्म या पेशा कोई भी भले घराने का नहीं है—'

'तुमने ही बताया था। इसके बाद?'

'तब तुम्हारे देवता—'

'क्या?'

'नहीं, ग्लानि नहीं, आत्मधिक्कार भी नहीं—क्योंकि वे उदार थे। पर शायद उन्होंने यह सोचा कि ऊपरी उदारता के लिए कुछ ऊपरी रुपया भी चाहिये। भले घराने की लड़की के नाम यदि उन्हें ढाई हजार दहेज मिला, तो वेश्या की लड़की के लिए कम से कम तीन हजार रुपये तो और मिलने ही चाहिये। इस सरल हिसाब के अनुसार इतने रुपयों की मांग करते हुए उन्होंने गिरिज़ा शंकर की मारफत तुम्हारी मां के नाम एक चिट्ठी भी

भेजी थी। और उन्हें रुपये मिल भी गये। इतना रुपया तुम्हारी मां के पास नहीं था। सब कुछ जोड़-जाड़ और बेच-बाच कर उनके पास सिर्फ ग्यारह सौ रुपये ही हुए, और गिरिजा शंकर ने अपने पास से चार सौ मिलाये। इस तरह डेढ़ हजार रुपये में सारा मामला निबटाया गया।'

सीता का मुँह एकदम लाल हो गया, मानो आग में झुलस गया हो। रुँधी हुई आवाज में सिर्फ इतना ही कह सकी, 'झूठ, झूठ, यह बिल्कुल झूठ है।'

उसकी बात को अनसुनी करते हुए गिरधारी कहता गया, 'इस मामले को निबटाने ही तो उस बार गिरिजा शंकर तुम्हारे यहाँ गये थे।'

'यह झूठ है—सरासर झूठ है।'

गिरधारी ने जरा हँसते हुए कहा, 'इसका सबूत भी मेरे पास मौजूद है।' यह कह कर उसने अपनी कमीज की जेब से एक पुराना, मुड़ा-मुड़ाया और फटा हुआ कागज निकाल कर सीता की ओर बढ़ा दिया।

कंपित हाथों से सीता ने कागज ले लिया। रमेश की ही लिखावट थी—

"श्रद्धेय गिरिजा शंकर जी,

आपने मुझे धोखा दिया है। भले घर की लड़की जानकर मैंने जिससे शादी की है, अभी मुझे पता चला है कि वह जन्म कुलटा है। चार सौ बीसी के अपराध में मैं आपको जेल की हवा खिला सकता हूँ। पर उस हद तक मैं नहीं जाना चाहता। मैं यही

सोचता हूँ कि जो होना था, वह तो हो चुका। यदि समाज-च्युत नारी से विवाह करने का साहस मुझ में था, तो पतिता को ग्रहण करने की हिम्मत भी है।

लेकिन एक बात है। इस समय मेरा हाथ बहुत तंग है। यदि सीता की मां से कह कर कुछ रुपया भिजवा दें—कम से कम तीन हजार—"

अक्षर क्रमशः धुँधले हो गये। चिट्ठी से नजर उठाकर सीता ने एक बार गिरधारी की ओर देखा। रमेश के फोटो के पास दीवार का सहारा लगाये वह बहुत बेशर्मी और इत्मीनान से बीड़ी पी रहा था। उसके चेहरे पर वही परिचित विचित्र और कुटिल हँसी थी।

हाथ के पास ही एक फूलदान रखा था। सीता की एक बार इच्छा हुई कि उससे इस व्यक्ति का सिर फोड़ दे। पर आश्चर्य, वह किसी भी तरह उसे न उठा सकी। सारी शक्ति क्षण भर में ही न जाने कहाँ गायब हो गयी, अँगुलियाँ भी जैसे जकड़ गयी हों। धुँधली दृष्टि में रमेश का फोटो और गिरधारी का चेहरा प्रायः एक-से हो गये।

खिड़की
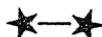
गली के दोनों ओर मकान हैं, आमने-सामने। गली बीस-पच्चीस हाथ से ज्यादा चौड़ी न होगी। मकानों में बहुत थोड़ा फासला है, लेकिन मन का फासला बहुत बड़ा है। यानी इस मकान में मैं रहता हूँ, पर मेरे एकदम सामने वाले मकान में रहने वाले गोल-मटोल और तुंबी तथा नुकीली मूछों वाले व्यक्ति से मेरा जरा भी परिचय और बातचीत तक नहीं हुई है। परिचय तो दूर रहा, अभी तक हमारा आमना-सामना भी नहीं हुआ। अतः नाम-धाम, नमस्कार और कुशल-वार्त्ता इत्यादि जानने का सुयोग ही नहीं मिला।

इतने पास रहते हुये भी दो व्यक्तियों का परिचय नहीं हुआ, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। यह तो इस युग की धारा है। वर्त्तमान सभ्यता के संघर्ष में पड़ौसी नामधारी प्राणा की मृत्यु हो गयी है। इस भले आदमी से सिर्फ मेरी नावाकफियत ही नहीं है, बल्कि मुझे तो याद भी नहीं आता कि इस शख्स को मैंने कभी देखा है। सच तो यह है, आज से सिर्फ महीने भर पहले ही सबसे पहली बार मैंने इसको देखा है।

ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं, जो हमेशा पास रहते हुए भी नजर में नहीं आते। अगर इसका कारण देखूँ तो आप कहेंगे कि जिस व्यक्ति में व्यक्तित्व नहीं होता, वह कभी भी दूसरे की दृष्टि आकर्षित नहीं कर सकता। पर ये सब बहुत बड़ी-बड़ी बातें हैं। आप ही सोचिये, कितने लोगों में अपना व्यक्तित्व होता है? अगर यही होता तो दुनिया के पन्द्रह आने भर लोग दृष्टि से परे ही क्यों रहते!

मैंने जितना सोचा है, उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इस शख्स को इतने दिनों तक देख कर भी जो मैं नहीं देख पाया, उसका कारण यही है कि मैं और वह व्यक्ति एक ही दृष्टिकोण के या एक ही युग के आदमी नहीं हैं। इसके वावजूद मेरी और उसकी उम्र में कोई विशेष फर्क नहीं है। मैं शिक्षा-दीक्षा और विचारों से माडर्न हूँ, और वह मुझसे एक युग पहले का आदमी है। उसकी लम्बी और नुकीली मूछें, बन्द गले का कोट, घुटनों से जरा नीची धोती और माथे तथा नाक पर लगा हुआ चन्दन, यह सब देखकर मैं भली-भाँति समझ गया कि हमारे देश में एक ही

परिवार में एक-एक युग के नमूने मिलते हैं। उम्र में जा मुझसे छोटे हैं, उनमें भी बहुत से ऐसे हैं जिनकी वेश-भूषा आचार-विचार बिल्कुल ईस्ट इंडिया कम्पनी के जमाने जैसे हैं। अतएव, वह हज़रत क्या करते हैं, यह बिना पूछे ही मैं बता सकता हूँ कि वे किसी सेठ के यहाँ मुनीम हैं।

लेकिन यह सब बेमतलब की बातें हैं। जिस आदमी को मैं अभी कल तक पहचानता नहीं था, उसी व्यक्ति के बार में इतनी गवेषणा करने की क्या जरूरत ? बताते हुये कुछ संकोच होता है। दरअसल उस व्यक्तिके लिये इतनी गवेषणा नहीं हुई, बल्कि उसकी पत्नी की वजह से यह दिलचस्पी पैदा हुई ! उसकी पत्नी को भी मैंने अभी उस दिन ही देखा।

नाइट ड्यूटी खत्म कर के जरा देर से घर लौटा था। शायद साढ़े नौ का वक्त था। मैं एक अखबार का सहायक सम्पादक हूँ, सो बीच-बीच में नाइट ड्यूटी भी पड़ जाती है। चाय का प्याला मुँह से लगाते ही रात्रि जागरण की थकावट दूर हो चुकी थी। ठीक उसी वक्त मेरे कानों में आवाज आई जैसे सामने के मकान में कोई बोल रहा हो, 'सुनती हो, मैं जा रहा हूँ, किवाड़ बन्द कर लो।' साथ-साथ भीतर से एक हाथ बाहर निकला, और उस हाथ ने दरवाजे के दोनों किवाड़ों को खींचकर बन्द कर दिया। औरत तो नजर नहीं आयी; सिर्फ गोरा-गोरा गोल हाथ नजर आया। हाथ की सुनहरी चूड़ियाँ सूर्य की किरणों में चमक उठीं। ऐसे कर-कमल वाली सुन्दरी होगी, इसमें कोई सन्देह ही नहीं। अब वह सीढ़ी चढ़कर ऊपर आ रही होगी। हाँ, वह

आ गयी। चेहरा देखने की इच्छा थी लेकिन ठीक से नजर नहीं आया। वह औरत सामने वाले कमरे में घुसते ही लेट गयी। सिर पहले से ही खुला था, लेटने से सामने का आँचल भी सरक गया और खुली हुई चोटी को उसने अपने सीने पर डाल लिया। लेटने के ढंग से ऐसा मालूम होता था जैसे वह बहुत थक गयी है।

एकाएक मेरे दिमाग में एक नयी बात आयी। यह मैंने पहले कभी सोचा भी नहीं था कि प्रत्येक गृहस्थी में पति नामक जीव भी होता है। यह जीव आयतन में छोटा होते हुये भी सबसे ज्यादा जगह घेरता है। यह पत्नी जो सुबह सूर्योदय से पहले ही उठ कर पति के काम-काज करने लगी है तो नौ बजे तक उसे साँस लेने की फुर्सत ही नहीं मिली। अब पति के घर से बाहर जाते ही उसे कितनी मुक्ति और आराम मिला है—यह मैंने इस पत्नी को देखकर सर्व प्रथम समझा।

आश्चर्य है, मैं अखबार में काम करता हूँ, दुनिया की खबर रखता हूँ, लेकिन सब से पास और सामने वाले मकान के बारे में कुछ भी नहीं जानता। आज ही के तो अखबार में खबर है कि पैरेगुए या और किसी देश में क्रांति की सम्भावना है। यह कितनी दूर की बात है। वहाँ क्रान्ति हो या न हो तो क्या बनता बिगड़ता है? पर इस सामने वाले मकान में ही कितनी जबरदस्त क्रांति हो सकती है—इसकी खबर कौन रखता है? इस युवती की खुली हुई चोटी और क्लांत भंगी में एक बहुत बड़े विद्रोह की सूचना है! किसे पता है कि घर-घर में ऐसी सूचना हो! मैं तो खुद एक सीधा सादा सभ्य व्यक्ति हूँ। जरा सोचिये, सोने के

पिंजरे में बन्द इस सभ्य और सुशील व्यक्ति को अगर मैं नील गगन की मुक्त वर्त्ता सुनाऊँ तो कैसा हो ? अखबार के जरिये मैंने बहुत दिनों तक राजद्रोहका प्रचार किया है। अब अपने घर में बैठे-बैठे अगर मैं पति के खिलाफ विद्रोह का प्रौपेगैंडा शुरू करूँ ?

सोचते-सोचते मैं विचारों में डूब गया। अचानक गीता ने आकर ध्यान भंग किया—'क्यों, तुम्हारी चाय अब तक खत्म नहीं हुई ?' शायद आप लोगों का ख्याल होगा कि मैं कुँवारा हूँ। नहीं, ये मेरी पत्नी हैं। अर्थात् मैं भी एक पति हूँ। लेकिन झूठ नहीं बोलूँगा। पति होते हुये भी मेरा पतिपन बहुत हल्का है। जैसे मैं इस युग का हूँ, वैसे ही मेरी पत्नी भी इस जमाने की ही है। कालेज में पढ़ी है और बी० ए० पास किया है।

शायद आप जानते हों कि वर्तमान सभ्यता में बहुत - सी खूबियाँ हैं। इस युग का यही रिवाज है कि जहाँ तक बन पड़े वहाँ तक पति-पत्नी के शारीरिक और मानसिक धरातल में समानता न हो। सुसभ्य समाज में मित्रता और दाम्पत्य दोनों का ही घेरा बहुत ही परिमित है। यह अच्छा है या बुरा, इस बारे में कुछ नहीं कहना है। हम पति-पत्नी जब खाने बैठते हैं तो कोरिया और हिन्द-चीन आदि के बारे में बातें करते हैं। प्रसंग के दूरत्व में ही दाम्पत्य जीवन की खैरियत रहती है।

खैर इन बातों को छोड़िये। मैंने बताया न, मेरी पत्नी कालिज में पढ़ी है। पढ़ाई पर उन्होंने जितना ध्यान दिया है, उतनी ही ज्यादा उन्होंने शरीर की उपेक्षा की है। वे सिर दर्द की क्रानिक रोगी हैं। हाँ, सिर है तभी तो दर्द

होता है । हमारी शादी 'कोर्टशिप' के बाद हुई थी । कोर्टशिप के वक्त तो सिर दर्द का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता था, तब तो सिर्फ शेली, कीट्स और रवीन्द्रनाथ की कविताओं का ही पाठ होता था । और गीता को ही क्या मालूम था कि मुझे प्राय: 'डिस्पेपशिया' की शिकायत रहती है ! पर मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि सामने वाले मकान की युवती को सिर दर्द का रोग नहीं है । मेरी तरह उसके पति को हर रोज डाक्टर के घर पर धरना नहीं देना पड़ता । गीता ने कहा, 'डाक्टर साहब ने परसों जो दवा दी थी उससे बहुत फायदा हुआ । वही दवा और ले आना ।' मैंने जवाब दिया— 'अच्छा शाम को ला दूँगा ।'

शाम को मैंने उस युवती के पति को देखा । वह अपने बरामदे में बैठा था, नगे बदन और तोंद निकाले । उसके एक तरफ बीड़ी का बण्डल था और दूसरी ओर एक जंग लगी हुई डिब्बी में पान रखे हुए थे सब कुछ देखने पर ऐसा लगा कि उसके चारों ओर स्त्री-हस्त की छाप मौजूद है । अगर इतनी ज्यादा मात्रा में ये हजरत पति न होकर थोड़े से प्रेमी होते तो मैं कहता कि श्री हस्त की छाप है । दो-तीन बच्चे भी हैं । वे बाप को घेरे बैठे हैं । यह बताने की कोई जरूरत नहीं कि हमारे कोई सन्तान नहीं है ।

उस दिन के बाद से मैंने उस युवती को कई बार और कई अवस्थाओं में देखा है । कभी-कभी फेरीवालों को बुलाकर छोटी-मोटी चीजें भी खरीदते हुए देखा है-जैसे बाल बाँधने का

फीता, सीप के बटन या सेफ्टीपिन इत्यादि। अकसर शाम के वक्त उदास मन से वह अपनी खिड़की के सहारे खड़ी हो जाती है और ललचाई दृष्टि से राहगीरों को देखती है। उसके चेहरे पर एक ताजगी है, लावण्य व आकर्षण है। तीन बच्चों की माँ हो जाने पर भी वह किशोरी जैसी लगती है। वाकई, युवती सुन्दरी है।

कुछ भी कहें, एक सुन्दर और लावण्यमयी मूर्ति विधाता की अपूर्व सृष्टि है। असल में वह जितनी पत्नी है, उससे ज्यादा किशोरी है। जानता हूँ सभ्य समाज में पराई स्त्री के सम्बन्ध में इतनी दिलचस्पी खराब है। पर यह कहने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं कि जो सभ्यता सौंदर्य के प्रति विमुख है, उस सभ्यता पर मेरा विश्वास नहीं। आदिम समाज में पराई स्त्री नाम की कोई चीज न थी। सिर्फ पुरुष था।

और थी नारी। सभ्य समाज में पुरुष की सिर्फ एक स्त्री होती है। और बाकी सब पर-स्त्री। इसका फल यह हुआ है कि सभ्यता ने पुरुषों को कायर बना दिया है, क्योंकि अधिकांश पुरुष ही पराई स्त्री के लिये कातर और उत्सुक रहते हैं।

गीता से मैंने पूछा था कि सामने वाली युवती से उसका परिचय हुआ है या नहीं? गीता ने उत्तर दिया—'नहीं, उसे अपने बच्चों और घर-गृहस्थी के झंझटों से ही फुर्सत नहीं मिलती—बातें कब करेगी?'

कहा, 'यहाँ अकेली पड़ी रहती हो। मेल जोल बढ़ा लो तो

एक सहेली मिल जायगी।' जवाब में गीता ने होठ टेढ़े करके कहा—'रहने दो, मुझे सहेली की जरूरत नहीं है।'

मैंने कहा न, उस व्यक्ति की चाल-ढाल पुराने ढंग की है। अब देखता हूँ कि उस पर भी आधुनिकता के दो एक भूत सवार हो गये हैं। भूत इसलिये की देखने में अद्भुत हैं। उस दिन वे शायद पत्नी को सिनेमा ले जा रहे थे। पत्नी ने आजकल की माडर्न लड़कियों जैसा ही ठाट बना रखा था! ऊँची ऐड़ी के सैंडिल पहनने की वजह से पत्नी को चलने में बहुत तकलीफ हो रही थी। उसकी तकलीफ देखकर मुझे रहम आया। उसके स्वाभाविक सौंदर्य को अप-टू-डेट बनाने की यह कोशिश क्यों? तीन बच्चों की माँ बन जाने पर यदि गीता भी ऐसा कृत्रिम बनाव-सिंगार करे तो वह भी दयनीय लगेगी!

आज कई दिन से मेरे मन में एक खटका लगा हुआ है। उस युवती को केन्द्र कर मेरे मन में जो विचार उठते हैं, इसकी खबर गीता को तो नहीं हुई? मैंने गौर किया है कि आजकल मेरी सामने वाली खिड़की बन्द रहती है। गीता क्या जान बूझ कर खिड़की बन्द रखती है, ताकि उस युवती के दर्शन न हों। मुझे मन ही मन बहुत गुस्सा आया। बी० ए० पास करने से क्या हुआ? ईर्ष्या और सन्देह तो दूसरी औरतों की तरह ही है।

और क्या मालूम, शायद पहले भी खिड़की बन्द रहती हो!

मैंने यह पहले गौर ही न किया हो। फिर, दिन भर में मैं कितनी देर घर में रहता हूँ? डर से मैंने कई दिनों तक खिड़की नहीं खोली। लेकिन बेचैनी और उत्साह क्रमशः बढ़ने लगा। गीता से कुछ पूछते हुए संकोच होता।

उस दिन कमरे में घुसते ही गीता ने कोरिया युद्ध का प्रसंग छेड़ दिया। बिना कोई जवाब दिये ही मैंने उठकर जोर से खिड़की खोल दी। वह चाहे जो समझे, मैं इतनी परवाह नहीं करता। गीता ने कुछ भी नहीं कहा। खिड़की के पास से हटकर वह दूसरी कुर्सी पर जा बैठी। शायद कुछ तेज आवाज में ही मैंने पूछा, 'बताओ तो सही, तुम हमेशा खिड़की बन्द क्यों रखती हो?' आवाज की तेज़ी से गीता कुछ चकित हुई। कुछ क्षण चुप रह कर उसने न जाने क्या सोचा और फिर कुछ मुस्कुराते हुए बोली—'यह क्यों पूछते हो? जब वह खिड़की खुली रहती है तो सामने वाले मकान का मोटा आदमी आकर खड़ा हो जाता है और घूर-घूर कर तथा आँखें फाड़कर इस तरह देखता है जैसे उसने औरत कभी देखी ही न हो।' यह कहते हुए गीता के मुँह और कान लाल हो गये।

मैं आश्चर्य से उसकी ओर देखता ही रह गया। आज कितने दिनों के बाद इस तरह शर्म से उसका लाल चेहरा देखा और जब गीता का मुंह लज्जा से लाल हो जाता है उस वक्त वह मुझे बहुत अच्छी लगती है। हम दोनों की आँखें चार होते ही हम खिल-खिला कर हँस पड़े।

धीरे-धीरे उठकर मैंने खुद ही खिड़की बन्द कर दी।

★+★

चश्मा

उनके कमरे के सामने बरामदा है, बीच में चौखट।

जिन्होंने जीवन की बड़ी-बड़ी ऊँचाइयाँ पार की हैं, वे देहली की जरा-सी ऊँचाई का अन्दाज न लगा सके। टकरा कर गिर पड़े और उनका चश्मा न जाने कहाँ जा गिरा। उठकर कमरे तक आने में उन्हें कई मिनट लग गये।

मनोहर प्रसाद किसी तरह खड़े हुए और उन्होंने दीवार का सहारा लेने के लिये हाथ बढ़ाया। चश्मा किधर गिर पड़ा?

प्रातःकाल के धुँधले प्रकाश में कुछ नजर नहीं आता; अगर कहीं टूट गया तो आज का सारा दिन बेकार जायेगा।

आज चश्मे के बिना एक मिनट भी काम नहीं चलता; वह दिन बीत चुके हैं, जब उन्होंने बिना चश्मे के नीलाकाश देखा है, हरे पत्तों पर धूप की सुनहली किरणें देखी हैं।

पर आज ये सब बातें अस्पष्ट स्वप्न की तरह सिर्फ याद आ जाती हैं।

वे प्रतीक्षा करने लगे। अगर कोई भी आ जाये तो चश्मा ढूँढ़ देगा।

अब दिन निकल आया, दैनिक जीवन शुरू होने में ज्यादा देर नहीं है, नीचे के कमरों से आवाजें भी आने लगी हैं। उमाकान्त चाय के लिये हल्ला मचा रहा है, बिना चाय का प्याला लिये वह बिछौने से नहीं उठ सकता।

एक अंगरेज़-कम्पनी में नौकरी करते-करते ही मनोहर प्रसाद की सारी उमर बीती है, लेकिन तब भी उन्होंने चाय पीने की आदत नहीं डाली; उनका जीवन बिना किसी प्रकार की बाधा के कटा है, रात को आठ - आठ बजे तक काम करने पर भी उनके सिर में कभी दर्द नहीं हुआ है। आठ बजे दफ्तर से घर आते वक्त बजार से वे गृहस्थी की सारी चीजें लेकर लौटे हैं; लेकिन उन्होंने किसी भी दिन ज़रा - सी भी थकावट का अनुभव नहीं किया।

पर आज कल क्या हो गया है? ज़रा-सी मेहनत करते ही साँस फूल-फूल जाती है।

फिर भी उन्होंने जो कुछ किया है, उसका मूल्य है। यह मकान पैतृक नहीं है, उन्होंने अपनी ही कमाई से बनवाया है। चार भले आदमियों के बीच में रहने लायक मकान बनवा लेना कुछ कम बड़ी बात नहीं है।

मनोहर प्रसाद आँखें बन्द किये और सिर पर दोनों हाथ रक्खे प्रतीक्षा करने लगे।

भोला अभी बरामदे में बुहारी देने आयेगा। वे बन्द आँखों से ही अनुभव करने में लीन हो गये—सड़क पर लगे हुए नीम के पेड़ की घनी पत्तियों पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं। एक दुबला-पतला व्यक्ति नीम की दँतुअन कर रहा है—उनसे भी ज्यादा दुबला-पतला व्यक्ति, यदि चश्मा होता तो वे उसकी पसली की हड्डियाँ भी स्पष्ट देख लेते।

अब उमाकांत की आवाज नहीं सुनाई पड़ रही है, शायद उसे चाय मिल गई है। लेकिन, उन्हें पहले क्या पता था कि यह कल्पना भी इतना चीख़-चिल्ला सकती है। उसके शान्त चेहरे को देखकर कौन कह सकता है कि वह इतनी ज्यादा असहिष्णु है? हालाँकि यह वही पुरानी गृहस्थी है और पहले वाले ही सब व्यक्ति हैं।

पर अनुपमा इसे कितनी कुशलता और निपुणता से चलात थी! यद्यपि उसकी उपस्थिति का कोई बाह्य प्रकाश दिखाई नहीं देता था, तथापि उसका अनुभव प्रति क्षण होता था। यदि आज वह जीवित होती तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब तक उनका चश्मा कभी का मिल गया होता और घुटने पर भी हल्दी-चूने का

लेप चढ़ गया होता। घुटने में जोर की चोट लग जाने से पैर सीधा करते नहीं बनता। लेकिन अब तक कोई ऊपर नहीं आया। बड़ी आफत है !

दिन बढ़ रहा है, बुड्ढे की खाँसी भी बढ़ रही है। सड़क पर लोगों का आना-जाना शुरू हो गया है।

कल्पना के गले की आवाज़ भी तेज हो गई है। भोला ऐसे कौन-से कामों में उलझ गया है जो उसने अब तक बुहारी नहीं दी ? कब वह बाजार जायेगा, कब साग-सब्जी लायेगा और कब रसोई बनेगी ? आज शायद उमाकान्त को बिना खाये ही आफ़िस जाना पड़ेगा !

सहसा रमाकान्त अपने कमरे से चिल्लाया—'भाभी, ख्याल रखना, आज दस बजे से मेरी क्लास है !'

कल्पना ने भोला के हाथ से झाड़ू छीनते हुए कहा—'बुहारी दे तो डाली ! अब जल्दी से बाजार जाओ। क्यों, सुबह जरा जल्दी से नहीं उठा जाता ?'

'लाइये, पैसे दीजिये।'—भोला ने हाथ फैलाया।

'सब्जी लाने के लिये पैसे दो !'—कल्पना ने आगे बढ़ कर उमाकान्त से कहा।

'महीना खत्म होने में अभी चार-पाँच दिन बाकी हैं। अब मेरे पास पैसे कहाँ हैं ?' दाढ़ी बनाते-बनाते उमाकान्त ने जवाब दिया।

'पैसे बचा कर क्यों नहीं रखते ? क्या सब लोग बिना खाये रहेंगे ?'

'बाबूजी से माँग लो न ! उन्होंने क्या देने से इनकार किया

है ! वे बुड्ढे आदमी हैं, उनका खर्च ही क्या है ? पेंशन का रुपया तो बैंक में ही जमा होता है !'

'परसों तो तुम्हारी जेब में काफी रुपये थे—कहाँ गये ?' संदेह से कल्पना के होंठ टेढ़े हो गये।

'कल तुम अचानक एक छपी हुई साड़ी जो खरीद बैठीं, इसका भी ख्याल है। मैंने मना किया लेकिन तुमने नहीं सुना।'—मुस्करा कर उमाकान्त बोला।

कल्पना ने साड़ी के प्रसंग को कानों पर उड़ाकर कहा—'मैं बाबूजी से नहीं माँग सकती, तुम ले आओ; उनसे मैं रुपये क्यों माँगूँ, तुम माँगो।'

'जाओ तो सही !'—उमाकान्त तौलिये से गाल पोंछते हुए बोला।

'मैं नहीं जा सकती !'—कल्पना ने बात खत्म करने के इरादे से जवाब दिया।

'तुम्हें अपने खर्च के लिये तो रुपये चाहिये नहीं, घर खर्च के लिये......'

'कुछ भी हो, जाना हो तो जाओ। तुम्हारे साथ बक-बक करने के लिये मेरे पास वक्त नहीं है। चावल चढ़ा आयी हूँ, खराब हो जाएँगे।'—कहती हुई कल्पना चली गई।

इसलिये उमाकान्त को ही जा कर कहना पड़ा—'आप कुछ रुपये दे सकते हैं।'

'रुपये ?'—मनोहर प्रसाद कुछ हिले-डुले—'कितने ?'

'यही···चार-पाँच !'

'देता हूँ ? देखो तो मेरा चश्मा कहाँ है। मैं अचानक चौखट से टकरा कर गिर पड़ा। उसी समय चश्मा न जाने कहाँ खो गया, मिलता ही नहीं। घुटने में भी बहुत जोर की चोट लग गई।'

'चश्मा ?'—उमाकान्त चारों तरफ देखकर बोला,—'यहाँ तो कहीं नजर नहीं आता। भोला को भेज देता हूँ, वह अच्छी तरह खोज देगा।'

मनोहर प्रसाद कुर्सी पर से उठे, अन्दाज से आगे बढ़े, हाथों से चाबी टटोली, सन्दूक से रुपये निकाले और उमाकान्त को देते हुए कहा—'यह लो !... शायद दूध अभी तक नहीं आया ?'

तह किये हुए नोट को हाथ में लेकर उमाकान्त बोला—'आ गया है ! हम लोगों ने तो चाय भी पी ली है। आपका दूध शायद अभी तक नहीं दे गया। मैं अभी भिजवाता हूँ।...कितनी खराब बात है।' काफी व्यस्तता का ढंग प्रकट कर उमाकान्त चल दिया।

'एक बात सुनो !'—लँगड़ाते-लँगड़ाते मनोहर प्रसाद कमरे से बाहर आये।

उमाकान्त ठहर गया।

'अच्छा, कुछ नहीं; जाओ।'

मनोहर प्रसाद फिर कुर्सी पर लेट गये। भोला झाड़ू देने नहीं आया—शायद भूल गया है।

हाँ, कल्पना दूध का ग्लास लिये आयी और बोली—'बाबूजी, नीचे काम काज में फँसी थी, इसीलिये इतनी देर हो गयी।'

'नहीं, नहीं, कौन सी ज्यादा देर हो गयी? देखो तो बहू, मेरा चश्मा कहीं नजर आता है? आखिरकार कहाँ चला गया?'

कल्पना दूध का ग्लास रखकर चश्मा ढूँढ़ने लगी और बोल उठी—'मिल गया आपका चश्मा! लेकिन यह तो एकदम चूर-चूर हो गया है।'

'अरे, देखूँ!'—मनोहर प्रसाद ने उठ कर बैठना चाहा, लेकिन वे दर्द से कराह उठे।

'क्या हुआ बाबूजी?'

'घुटने में चोट लग गई है?'—मनोहर प्रसाद फिर लँगड़ाते हुए आगे बढ़े।

'कैसे?'—कल्पना चिन्तित हो गई।

'सुबह गिर पड़ा था। उफ़! चश्मा टूट गया—बहुत पुराना चश्मा था!'

'आप दुखी न हों। मैं उनसे कहे देती हूँ, वे आफिस से लौटते समय आपके लिये नया चश्मा लेते आयेंगे। दूध पी लीजिये,' कल्पना ने ग्लास आगे बढ़ा दिया।

उन्होंने एक घूँट दूध पिया, और कहा—'ठहरो, डाक्टर का प्रिसक्रिपशन तो दे दूँ, नहीं तो वह चश्मा कैसे लायेगा?'

उन्होंने प्रिसक्रिपशन बहुत तलाश किया—ट्रङ्क में, सूटकेस में, आलमारी में; लेकिन वह कागज कहीं न मिला। तब हार कर

कल्पना से कहा—'जरा तुम एक बार सन्दूक अच्छी तरह देखो; मुझसे अब खड़ा नहीं रहा जाता।'

'दाल जल जायेगी, जरा उतार आऊँ।'—कह कर कल्पना चली गयी।

मनोहर प्रसाद कुर्सी पर लेट गये। उन्होंने आँखें बन्द कर लीं।

कल्पना काफ़ी देर बाद लौटी, और खुला सन्दूक़ देखने लगी। एक कपड़े के नीचे नोटों की गड्डी रखी हुई थी। क्षण-भर के लिये कल्पना का हाथ गड्डी पर अटक रहा और किसी एक अदृश्य आकर्षण से उसका सारा शरीर निस्पन्द हो गया। उसने एक बार बरामदे की तरफ़ देखकर दस-दस के दो नोट ब्लाउज़ के भीतर छिपा लिये; फिर सन्दूक बन्द कर मनोहर प्रसाद से कहा—'इसमें तो नहीं है बाबूजी!'

'जाने दो! उमाकान्त से कह देना वह आफिस से जरा जल्दी लौटे, मैं खुद उसके साथ बाजार जाऊँगा। फ्रेम तकिये के नीचे रख दो।'

सुबह की हल्की-हल्की धूप धीरे-धीरे ग़ायब हो गयी—मनोहर प्रसाद ने यह सिर्फ़ अनुभव किया। वे यह न सोच सके कि आज की शाम भी व्यर्थ नष्ट होगी, इन दिनों चैत्र के महीने में शाम का समय बड़ा मनोरम होता है।

'प्रत्येक क्षण का मूल्य है, एक रूप है—यह जानती हो?' मनोहर प्रसाद कुर्सी पर सीधे बैठ गये—'सच! तुम्हें कैसे

समझाऊँ ? जब आँधी आती है, तब तुमने आकाश देखा है ? उस वक्त आकाश का रूप स्वतंत्र होता है। हर रोज़ के आकाश से उसका एक अलग रूप-रङ्ग होता है, साधारण नहीं। और ठीक इसी वजह से मन पर भी उसका एक स्वतंत्र प्रभाव पड़ता है। जब आँधी आती है, तो बहुत दूर से घने काले बादल दौड़े चले आते हैं, हवा में इधर-उधर उड़ते हैं, झर-झर पानी बरसता है; क्या इन बातों से तुम्हारे मन में परिवर्तन नहीं होता ?'

'होता क्यों नहीं !' तम्बाकू डाले हुए पान को चबाते-चबाते उनकी पत्नी अनुपमा ने जवाब दिया था—'मुझे तो बहुत बुरा लगता है, और पानी बरसता है, तो किसे बुरा नहीं लगता ? छत पर कपड़े नहीं सुखाये जा सकते, वड़ी-पापड़ और अचार आदि खराब हो जाते हैं, रोटी पानी से निबट कर पास-पड़ौस में जाना मुश्किल होता है। इसके अलावा बदली के दिनों में मेरा सिर भी दुखने लगता है।'

मनोहर प्रसाद ने और कुछ नहीं कहा। पर, उनके चेहरे के भावों को ग़ौर कर अनुपमा बोली—'मुझे पता नहीं था कि तुम्हारे अन्दर कविता भी है।'

'थी !' मनोहर प्रसाद ने कहा—'लेकिन, न कभी मौक़ा मिला, न समय ! फिर भी यह चीज मरती नहीं, सो जाती है !'

शायद मनोहर प्रसाद की आँख लग गयी थी। नीचे ज़ोर-ज़ोर की आवाज़ हुई, तो उनकी चेतना जाग उठी। भोला

बाजार से लौट आया है, पैसों का पूरा हिसाब नहीं दे पा रहा है; और कल्पना की डांट-फटकार की तीक्ष्णता शालीनता की सीमा पार कर गयी है। उमाकान्त या रमाकान्त को इन सब बातों में दखल देने की फुरसत नहीं है। शायद वे लोग खाने बैठ गये हैं।

मनोहर प्रसाद लँगड़ाते हुए नीचे उतर आये; बोले—'इससे इतनी माथा-पच्ची करने की क्या जरूरत ? आज ही इसे निकाल दो। ऐसे पैसे खाने वाले आदमी की हमें जरूरत नहीं। भोला, मेरे साथ आओ, अपना हिसाब ले जाओ। दामोदर बाबू कई बार कह चुके हैं कि उनके पास एक बहुत अच्छा और ईमानदार नौकर है।'

मनोहर प्रसाद के पीछे-पीछे भोला भी ऊपर आया। उन्होंने हिसाब किया, और उसे सत्रह दिन की तनख्वाह दे दी। 'इस वक्त खाना खाकर जाना !' उन्होंने यह बात तब कही, जब भोला कमरे से निकल रहा था।

वे फिर कुर्सी पर लेट गये; पर, इस बार उनकी दृष्टि में पहले जैसी निस्पृहता या निर्लिप्तता न थी। वे जैसे खोये जा रहे थे कि अचानक उन्होंने अपने आपको खोज लिया। उन्होंने एक दिन जिस गृहस्थी को बसाया था, बनाया था, वे उसी गृहस्थी के घेरे से बहुत दूर चले गये हैं और जीवित रहने के लिये पराश्रय खोज रहे हैं; और तब खुद ही चकित हो उठे।

चश्मा न होने से उनका सारा दिन बेचैनी से कटा। उनके लिये आँखों से सब कुछ देखना इतना जरूरी है, इस बात का उन्होंने

पहले कभी इतना ज्यादा अनुभव नहीं किया था। सिर्फ देखना ही नहीं; बल्कि गृहस्थी की सब बातों पर नजर रखना जरूरी है, हिसाब लेना जरूरी है, हिसाब-किताब रखना भी जरूरी है।

उन्होंने रमाकान्त को नौकर लाने के लिये दामोदर बाबू के यहाँ भेजा था। वह अब तक नहीं लौटा। अगर नौकर नहीं मिला था, तो कम से कम एक बार जवाब दे जाता।

लेकिन उनकी यह बेचैनी जल्दी ही दूर हो गयी।

पैरों की परिचित आवाज़ सुनते ही वे वाकई चौंक उठे और बोले—'कौन है रे वहाँ ?'

'जी, मैं हूँ; कमरे में झाड़ू दे रहा हूँ !'

'तुम गये नहीं ?' उनकी आवाज कुछ तेज होती जा रही थी।

'बहूजी ने नहीं जाने दिया।'

मनोहर प्रसाद फिर कुछ न बोले। भोला कमरे में झाड़ू लगा कर चुपचाप नीचे चला गया।

मनोहर प्रसाद ने कुर्सी पर बैठे-बैठे अनुभव किया कि सूरज डूब रहा है और संध्या काली अन्धेरी चादर ओढ़े आ रही है। चश्मा न होने से वे कुछ न देख सके, सोचने लगे, उधर दामोदर और पीताम्बर चौपड़ खेल रहे होंगे, चाय पी रहे होंगे। पीताम्बर के अलावा इस मुहल्ले भर में ऐसा कोई नहीं है, जो शतरञ्ज या चौपड़ में उनसे टक्कर ले सके।

बाहर अन्धकार बढ़ रहा है, अब आज चश्मा लाने का वक्त ही कहाँ रहा ? उन्होंने उमाकान्त से आफिस जाते वक्त बार-बार

कह दिया था। आज ऐसा जरूरी काम होते हुए भी जल्दी नहीं आया वह !

उसे ऐसा कौन-सा जरूरी काम आ गया ? कौन जाने, शायद वह भूल गया हो।······लेकिन,···चश्मा लाने के बजाय ऐसा और कौन-सा जरूरी काम हो सकता है, जो आज पूरा किये बिना न चलता ?

अब और प्रतीक्षा करने से कोई लाभ नहीं। रात हो चुकी है।

वे बरामदे से उठकर कमरे में आये और अपनी खाट पर लेट गये। वहाँ चौपड़ हो रही होगी, एक अजीब निराशा से उनका मन भर गया।

तो भी वे एक वार कल्पना से बिना पूछे न रह सके—'क्या उमाकान्त को आज कोई बहुत जरूरी काम था ? मुझे चश्मा दिलाने के लिये ले जाने की बात थी। जाते वक्त मैंने उसे याद भी दिला दी थी।'

'मुझसे तो कुछ कह नहीं गये।'

'ऐसा कोई जरूरी काम हो सकता है क्या ?'

'मुझे तो पता नहीं।'

कल्पना जाने लगी। मनोहर प्रसाद ने पुकारा—'सुनो, रमाकान्त को एक बार यहाँ भेज दो।'

'वे भी अभी नहीं लौटे।'

'अभी नहीं आया ? क्या वह रोज रात को इतनी देर से आता है ?'

कल्पना ने इस प्रश्न का कोई जवाब नहीं दिया। परन्तु वह बिना कुछ कहे जा भी न सकी।

मनोहर प्रसाद ने फिर कहा—'कोई जवाब नहीं दिया—क्या वह हर रोज रात को इतनी देर से आता है।'

'नहीं, हर रोज नहीं, कभी-कभी देर से आते हैं।'

'कभी-कभी ही देर क्यों होगी?'—मनोहर प्रसाद बिछौने से उठ कर बैठ गये—'उसने समझा क्या है! वह कालेज में पढ़ता है, इसलिये कोई नियम-कायदा नहीं मानेगा? नहीं, मेरे यहाँ ऐसी आजादी न चलेगी। समझीं?'—जैसे वे कल्पना को ही डांट रहे हों, अपनी आवाज सुन कर और भी कड़े पड़ गये, आत्म-विश्वास से और भी कठोर हो उठे। बोले—'रमाकान्त के आते ही उसे फौरन मेरे पास भेज देना।'

कल्पना नीचे उतर गई।

रमाकान्त सीटी बजाता हुआ नौ बजे घर आया और रसोई घर के दरवाजे पर खड़ा होकर बोला—'सुनो भाभी, पहले वादा करो कि भैया से कुछ भी न कहोगी।'

'पतिव्रता नारी अपने पति से कुछ भी नहीं छिपाती, यह जानते हो?'

'ऐसी किंवदन्ती सुनी तो है, लेकिन इस बात पर विश्वास कभी नहीं किया। जो स्त्री लुकाने-छिपाने में जितनी ज्यादा चतुर होती है, वह उतनी ही ज्यादा पतिव्रता के नाम से परिचित

होती है। इसके अलावा भाभी, यदि चोरी पकड़ ही ली गई तो प्रेम की मृत्यु हो जाती है। फिर तो सब कुछ खत्म हो जाता है।'

'लेकिन बात क्या है? तुम अपने भैया से कितना डरते हो, यह मैं जानती हूँ।'

'मैं प्रेम करने लगा हूँ।'—रमाकान्त ने धीमी आवाज में उत्तर दिया।

'सब मिला कर तुमने कितनी बार प्रेम किया है? यह शायद चौथी बार है?'—कल्पना ने पूछा।

'यह अन्तिम वार है। लेकिन बाबूजी और भैया को राजी करने का भार तुम्हारे ऊपर है।'

'अच्छा, इस बार मामला काफी आगे बढ़ चुका है?'

'काफी आगे तो नहीं बढ़ा है, ऐसी जगह अलबत्ता पहुँच चुका हैं, जहाँ प्रकाश दिखाने वाली की जरूरत है।'

'इतनी बड़ी जिम्मेदारी मैं पूरी कर सकूँगी?'

'तुम तो बी० ए० पास हो!'

'हाँ, बी० ए० पास तो हूँ; परन्तु उस शिक्षा के साथ आज के जीवन का कितना सम्बन्ध है? अब तो यह गृहस्थी का चक्कर है, हिसाब-किताब रखना, रसोई बनाना, साड़ियाँ और गहने संभालना। खैर, मुझे क्या करना होगा, यह बताओ। मगर सुनो, इससे पहले यह हुक्म है कि जैसे ही आओ, बाबूजी से मिल लो। मैं तो तुमसे यह कहना भूल ही गयी थी।'

'क्यों? ऐसा हुक्म एकाएक क्यों?'

'आज उनका सारा दिन बिना चश्मे के कटा है! यहाँ दो-दो

जवान बेटे हैं; लेकिन किसी से भी यह नहीं हुआ कि बनवा कर ला देता। क्या इस बात पर उन्हें गुस्सा न आयेगा ?'

'अरे भाभी, मुझे क्या मालूम है कि उनका चश्मा टूट गया है और नया बनवा कर लाना है।'

'अच्छा, तुम घर-गृहस्थी की कौन-सी खबर रखते हो ?'

'खबर रखने की जरूरत भी क्या है ?'

'ओ ! देखती हूँ कि तुम बिगड़े जा रहे हो !'

'नहीं, बिगड़ नहीं रहा हूँ। असल बात जानती हो भाभी ? उम्र बढ़ने के साथ-साथ मनुष्य में एक प्रकार की व्यग्रता आती है। हाथ से क्षमता चले जाने का दुःख और अपने खोये हुए अधिकारों को फिर से पाने की व्याकुलता—इस आदत से, इस स्वभाव से कोई भी वृद्ध नही बचता। एक दिन हम लोगों में भी यह आदत आ जायेगी।'

पीछे से जूतों की आवाज़ आई। 'शायद कोई गम्भीर आलोचना हो रही है—'उमाकान्त ने पूछा।

'तुम इस वक्त लौटे हो ?'—कल्पना ने शिकायत के स्वर में कहा—'बाबूजी का चश्मा लाना था न ?'

'इस्स !'—उमाकान्त बहुत दुःख भरे स्वर में बोला—'मैं बिल्कुल भूल गया था। क्या बाबूजी कुछ कह रहे थे ?'

'पहले मुझ पर हमला हुआ है !'—रमाकान्त ने कहा।

'मैं अभी बाबूजी के पास जाता हूँ। वाकई गलती मेरी है।'—उमाकान्त बोला।

अँधेरे कमरे में घुसकर उमाकान्त यह न जान सका कि बाबूजी

सो रहे हैं या नहीं। उसने आवाज़ दी—'बाबूजी!'

मनोहर प्रसाद ने करवट बदली।

उमाकान्त बोला—'एक बहुत जरूरी काम में फँस गया था, इसलिये वक्त पर न आ सका। कल सबेरे पहला काम......'

'तुम लोगों में से किसी को भी कुछ करने की जरूरत नहीं है।'

'आप देखियेगा...'

'मेरे सामने से चले जाओ, मुझे चश्मा नहीं चाहिये।'

इस तरह बाबूजी ने कभी उससे बातें नहीं की थीं, जब वह स्कूल में पढ़ता था, तब भी नहीं। उमाकान्त ने शायद यह पहली बार अपने पिता को नाराज होते देखा। उसने कभी सोचा भी न था कि वे एक मामूली-सी बात पर इतने उत्तेजित हो जायेंगे। उसने फिर कहा—'कल मैं आपका चश्मा अवश्य ला दूँगा। आप नाराज न हों।'

उसकी मुलायम आवाज़ सुनकर मनोहर प्रसाद में एक अद्भुत परिवर्तन हुआ। उन्होंने शान्त भाव से जवाब दिया—'अच्छा, कल ही ला देना।'

आधी रात को कल्पना की नींद खुल गई—बात क्या है? अभी तो दिन पूरे नहीं हुए। कहीं उसने हिसाब लगाने में गलती तो नहीं की? वह चुपचाप पड़ी रही। लेकिन, धीरे-धीरे दर्द बढ़ता ही गया। उसने खिड़की से झाँक कर देखा कि अभी

सवेरा होने में कितनी देर है ? उसे डर लगा। हाथ-पैर ठण्ढे हो गये हैं और माथे पर पसीना आ गया है। आखिर उसने गहरी नींद में सोये हुए उमाकान्त को पुकारा—'ऐ-ऐ !'

करवट लेते हुए उमाकान्त ने पूछा—'क्या है ?'

'दर्द हो रहा है !'—कल्पना सिर्फ इतना ही कह सकी।

'दर्द—इतनी रात को ?'—भय के स्वर में उमाकान्त ने प्रश्न किया।

कल्पना उठकर बिछौने पर बैठ गई। रोशनी देखकर और उमाकांत की आवाज सुनकर उसका भय कुछ कम हो गया और उसने पूछा—'मोटर या और कोई दूसरी सवारी मिल सकेगी ?'

'इस वक्त सवारी कहाँ मिलेगी ?'

'पूरण सिंह तो पास ही रहता है। बग्घी वालों के अड्डे पर जाता हूँ। उन्हीं में से किसी को—'

'नहीं, उसमें दचके लगेंगे।'—कल्पना मारे दर्द के कराह उठी, कुछ ठहर कर बोली—'सुनो, तुम इक्कीस नम्बर वाले मकान में चले जाओ। उनके यहाँ मोटर है, वे दे देंगे।'

'अरे, वे तो बड़े आदमी हैं, मुझे मोटर क्यों देने लगे ? दूसरे, उन्हें इतनी रात में कैसे जगाऊँ ? वे लोग क्या सोचेंगे ?'

'कुछ न सोचेंगे, तुम जाओ तो सही !'

'जाकर क्या कहूँ ?'

'कहना कि मुझे अपनी पत्नी को अभी अस्पताल पहुँचाना बहुत जरूरी है, इसलिये मोटर चाहिये। जाओ, जल्दी जाओ।'

'और किसी की नींद न खुली, तो ?'

'इतनी रात में तुम पुकारोगे और किसी की नींद न खुलेगी— ऐसा कहीं हो सकता है ? जब तक कोई जवाब न मिले, बराबर पुकारते रहना।'

दरवाजा खोल कर उमाकान्त बाहर निकला। कल्पना ने कहा—'नंगे पैर क्यों जा रहे हो, चप्पलें पहनते जाओ न !'

उमाकान्त ने चप्पलों में पैर डालते-डालते प्रश्न किया—

'उनका ड्राइवर तो यहाँ रहता नहीं, फिर क्या होगा ?'

'तुम जाओ तो सही !'—कल्पना ने हँस कर कहा—'उनके यहाँ कोई-न-कोई मोटर चलाना जरूर जानता होगा !'

'क्या बजा है ?'

'दो बजने में दस मिनट बाकी हैं। जाओ, जल्दी करो।'

उमाकान्त को बहुत देर तक नहीं पुकारना पड़ा। मकान मालिक ने खुद ही दरवाजा खोला। वे प्रायः पचास साल के होंगे—ढीला पायजामा और जालीदार बनियान पहने हुए— उमाकान्त को देखते ही बोले—'आइये - आइये ! कहिये, क्या बात है ?'

'मैं उन्नीस नम्बर वाले मकान में रहता हूँ—पीले रंग का दो मञ्जिला मकान !'

'हाँ-हाँ, मैं जानता हूँ, कहिये !'

'मुझे अपनी पत्नी को अभी अस्पताल ले जाना है। यदि आप कृपा कर अपनी मोटर······'

'जरूर-जरूर! पांच मिनट ठहरिये। मैं खुद तो ड्राइव करना जानता नहीं, लेकिन लड़के को बुलाये देता हूँ, आप बैठिये।' वह सज्जन भीतर चले गये।

फिर भी उमाकान्त बैठ नहीं सका, खड़ा ही रहा। दर्द के मारे कल्पना का क्या हाल होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता। यही पहला बच्चा है। वह बेचैन हो रही है। प्रति क्षण में जैसे अनादि काल की निस्तब्धता निस्पन्दित हो रही है।

वह सज्जन पाँच मिनट में ही लड़के के साथ लौट आये।

रात की हवा के साथ कल्पना के चीखने-कराहने की आवाज़ आ रही है। उमाकान्त अस्पताल के लोहे के गेट को एक बार देखकर फुटपाथ पर ही बैठ गया। धीरे-धीरे प्रातःकाल हुआ। दरवान ने आकर खबर दी कि कल्पना के निर्विघ्न सन्तान हो गई है। जच्चा और बच्चा, दोनों मजे में हैं। ईश्वर को धन्यवाद दीजिये। खुशी से उमाकान्त की आँखें गीली हो गईं। उसने चाहा कि एक बार कल्पना को देखे। परन्तु दरवान ने असमर्थता प्रकट की, कहा—'हुक्म नहीं है, आठ बजे आइये।' उमाकान्त घर न जाकर चाय की एक दूकान में घुस गया।

मनोहर प्रसाद पिछली रात का दुःख भूल कर सुबह उठे। ये लोग अभी लड़के हैं, हमेशा सब काम अपनी जिम्मेदारी समझ कर समयानुसार करेंगे, उनसे वे ऐसी आशा ही क्यों रखते हैं? वे मामूली-सी बात पर अपना धैर्य खो बैठे, इसका उन्हें दुःख

हुआ। गत कल उन्हें अनुपमा का अभाव विशेष रूप से खटका।

उन्होंने सोचा, चश्मा बन जायेगा तो वे आकाश; पेड़ की पत्तियाँ, सड़क की जनता तथा दूसरी सब चीज़ें देख सकेंगे, आज शाम को ही। उन्हें ऐसा जान पड़ा, जैसे उन्होंने कितने ही दिन से कुछ भी नहीं देखा है। अब वे नया जीवन आरम्भ करेंगे, समस्त दुःख, क्रोध और अभिमान भूल जायेंगे।

दो दिन से दाढ़ी नहीं बनी है। हमेशा शेव करके बाहर निकलने की उनकी आदत है। वे सोच में पड़ गये। बिना चश्मे के शेव कैसे कर सकते हैं? बाहर सड़क पर से किसी नाई को बुला कर दाढ़ी बनवाने से उन्हें चिढ़ है। यह तो अच्छी मुसीबत में फँसे!

मनोहर प्रसाद नहा-धोकर अपने कमरे में आ गये, फिर भी उन्हें किसी की बोली सुनाई नहीं दी। आखिर सब लोगों को हो क्या गया है?

नहीं, उन्हें जरा कड़ाई से काम लेना पड़ेगा, जरूरत के अनुसार कठोर भी होना पड़ेगा। वे प्रतीक्षा करते रहे। एं, भोला भी नजर नहीं आता! तो क्या आज चाय नहीं बनेगी?

सुबह के वक्त कल्पना कम-से-कम एक बार तो रोज ही उनके कमरे में आती है। बिछौना लपेट देती है, दाढ़ी बनाने का सामान मेज़ पर रख देती है, दो-चार बातें करती है, यह भी पूछ लेती है कि उनकी इच्छा कोई ख़ास चीज खाने की तो नहीं है। पर आज उसकी आवाज़ भी सुनाई नहीं दे रही है।

वे असंतोष के धुएँ में घुटने लगे।

आखि़रकार इन सब लोगों ने समझ क्या रखा है? वे आज भी काम करने लायक हैं, किसी के मुहताज नहीं हैं, शरीर या मन से पंगु नहीं हो गये हैं। मनोहर प्रसाद एक अस्पष्ट-कुहासे के वातावरण में चुपचाप बैठे रहे।

वे किसी की खोज-खबर नहीं लेंगे। उन्हें किसी सहायता की ज़रूरत नहीं है। बस, दामोदर बाबू के साथ बाजार चले जायेंगे और चश्मा ले आयेंगे।

समय बीतने लगा। अब और ज्यादा देर तक चुप नहीं बैठा जा सकता। मनोहर प्रसाद नीचे उतर आये। जब उन्हें किसी की आवाज़ सुनाई न दी तो वे ज़ोर से चिल्ला उठे—'भोला!'

'आया बाबूजी!' नल के पास से भोला ने जवाब दिया।

'आज तुम लोगों को क्या हो गया है? क्या सब मर गये?' मनोहर प्रसाद फिर चिल्लाये।

भोला चुपचाप खड़ा रहा। उसने कोई जवाब न दिया।

'बहू कहाँ है?'

'पता नहीं, कहाँ गयी हैं। मैंने तो उन्हें सुबह से ही नहीं देखा!'

'उमाकान्त कहाँ है?'

'वे भी कहीं नजर नहीं आते।'

'और रमाकांत?'

'मैंने उन्हें भी नहीं देखा।'

'जब तू सुबह सो कर उठा, तो तुझे कोई दिखाई नहीं दिया?'

'सिर्फ छोटे बाबू थे, कुछ देर पहले ही बाहर गये हैं।'

मनोहर प्रसाद बिगड़ उठे—'तू यहाँ किस लिये रखा गया है? जा, चला जा, भाग यहाँ से। फिर कभी मैंने तुझे यहाँ देखा, तो ऐसी खबर लूँगा कि याद करेगा। जा, निकल यहाँ से!'

भोला चला गया, या नहीं, यह तो पता न चला; लेकिन वह उनके सामने से हट जरूर गया।

मनोहर प्रसाद अपने कमरे में लौट आये और कुर्सी पर लेट गये। उनके पैर का दर्द तो कम हो गया था, फिर भी उन्हें जैसे बहुत थकान मालूम हुई। सहसा सीढ़ियों पर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। पर, वे उसी तरह आँखें बन्द किये पड़े रहे।

'बाबूजी, आप सो रहे हैं?'

आवाज उमाकांत की थी। लेकिन, मनोहर प्रसाद उसी तरह पड़े रहे, बोले तक नहीं। उनके चेहरे पर छाई हुई विषाद की कालिमा और भी गहरी हो गयी।

'अस्पताल में आपके पोते ने जन्म लिया है।'

'कब?' मनोहर प्रसाद उठ कर बैठ गये और उनके चेहरे पर विषाद की कालिमा को फाड़ कर हर्ष की आभा मुस्करा उठी।

'आज सुबह चार बजकर दस मिनट पर!'

'देखने में कैसा है, तेरे जैसा या अपनी माँ जैसा? काला है या गोरा? कमजोर तो नहीं है?'

'अभी तो बहुत छोटा है। क्या कहा जा सकता है?'

'और बहू कैसी है?'

'अच्छी है! अब चलता हूँ बाबूजी, आज आफिस के लिये बहुत देर हो गयी है।' उमाकांत जल्दी से चल दिया।

'भोला को भेज देना !' मनोहर प्रसाद बोले—'कैसे लड़के हैं ! रात भर चुपचाप गोलमाल करते रहे।... मुझे खबर तक न दी। यह भी न सोचा कि बूढ़ा बिना चश्मे के नवजात शिशु का मुँह कैसे देख सकेगा ?...चलो ईश्वर की दया से यह अभिलाषा भी पूरी हो गई।'

'मैं आ गया बाबूजी, आपने बुलाया था ?' भोला बोला।

'अरे, तू अभी तक गया नहीं ? अच्छा ही हुआ ! दामोदर बाबू का मकान जानता है न, वही मोटे-मोटे से, जो अक्सर शतरञ्ज खेलने आया करते हैं !'

'जी हाँ, जानता हूँ !'

'जा, उन्हें बुला ला ! कहना, मैंने बुलाया है। चश्मा लेने बाजार जाना है। समझ गया ?'

'समझ गया !'

'क्या कहेगा ?'

'कहूँगा कि आपने बुलाया है।'

'आपने—किसने ?'

'बड़े बाबू ने !'

'फिर खड़ा क्यों है ? जा-जा, जल्दी जा !'

भोला चला गया और पन्द्रह मिनट बाद ही लौट आया। बोला, 'दामोदर बाबू मथुरा गये हैं। परसों लौटेंगे।'

बारामदे में पड़ी आराम कुर्सी पर मनोहर प्रसाद बैठ गये। मकान में किसी की भी आवाज सुनाई नहीं पड़ती। रमाकान्त शायद कालिज चला गया है।

* * * तीन रातें * * *

रात के प्रथम प्रहर में और भी उजाला था। बगीचे में एक स्निग्ध मादकता छायी हुई थी। देवदारू के लम्बे-लम्बे वृक्ष मानो उर्द्धबाहु होकर आकाश से कुछ आत्म-निवेदन कर रहे हैं।

रात के प्रथम प्रहर में जब विमला छत पर आकर खड़ी हुई तब आकाश के एक कोने में चाँद खिला हुआ था। रजनी की उस निस्तब्धता में चन्द्रमा की फीकी रोशनी से एक विचित्र-सा समा बंधा था।

विमला की इच्छा हुई कि इन देवदारू वृक्षों की तरह वह भी अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर

आकाश से प्रार्थना करे—जिसका अन्त अश्रुओं में होता है।

ऐसी ही थी उस दिन की वह दीर्घ, स्तब्ध, एकाकी रजनी।

सारी रात विमला चहलकदमी करती रही, एक ओर से दूसरी ओर। पीले पड़े हुए चाँद की रोशनी उसके शरीर पर पड़ रही थी। इस तरह काफी समय बीता।

विमला को आशा थी कि विनोद शहर से लौट आयेगा। वहाँ का काम खत्म होते ही वह यहाँ आ पहुँचेगा। सरकारी काम होने पर भी कोई ज़रूरी काम नहीं है, और फिर शहर ही कौन बहुत दूर है। अगर जोर से ड्राइव किया जाय, विमला के साथ समय बिताने की इच्छा हो, तो ऐसी शुभ्र रजनी में वह किसी भी दशा में दूर नहीं रहेगा।

बगीचे में गेंदा और गुलाब के सैकड़ों फूल खिले हैं और वायु से उनकी सुरभि चारों ओर फैल रही है। प्रथम मिलन के दिन भी ऐसे ही आनंददायक थे। चाँद छिपने से पहले ही शायद विनोद वापस आ जाय।

आकाश से आँखें हटाकर विमला ने एक बार सड़क की ओर अच्छी तरह नज़र दौड़ाई। और फिर चाँद पर आँखें गड़ाये टहलना शुरू कर दिया।

आज की ठण्डी हवा भी बहुत अच्छी लग रही है। चम्पा के फूल खिले हैं और बीच-बीच में हवा के झोंके के साथ उनकी सुगंध आ जाती है। इस सन्नाटे में झींगुरों का संगीत भी जारी है। रात की खामोशी और गम्भीरता को भेदती हुई यह कर्कश आवाज

विधाता से क्या प्रार्थना करती है, कौन जानता है…?

कुछ दूर पर चौकीदार के कमरे में रोशनी जल रही है। उस ओर विमला की दृष्टि पड़ते ही वह रोशनी भी मानो शर्म से बुझ गयी। शायद वहाँ से कोई लैंप उठा कर ले गया। ढोल की आवाज भी सुनाई पड़ रही है, लेकिन आज यह आवाज अच्छी नहीं लगती।

विमला ने सोचा, चौकीदार की पत्नी की तरह आज यदि वह इन लोगों की मजलिस में शामिल हो सकती, तो फिर उसकी यह रात ऐसी नीरस और प्राणहीन न बीतती। छत के इस कोने से दुमञ्जिले का ड्राइङ्ग रूम साफ नज़र आता है, वहाँ मशाल जैसी तेज और तीक्ष्ण रोशनी है।

वह कमरा उनका है। आधुनिक सभ्यता के कृत्रिम साधनों से सुसज्जित वह कमरा जैसे विमला की हँसी उड़ा रहा है। ब्राकिट के ऊपर लगी हुई जर्मन क्लाक की टिक-टिक ध्वनि छत पर साफ सुनाई देती है। विनोद की फोटो पर रोशनी पड़ रही है, और रोशनी की वजह से उनकी भौंहें और भी ज्यादा चमक रही हैं।

रजनी के इस फीके प्रकाश और अंधकार के आगमन में सफेद धोती में लिपटे हुये विमला के लम्बे शरीर को अचानक देख कर शायद एक बार आदमी सिहर उठे—ऐसा ही एक दुखी, विषादमय और थका हुआ-सा भाव उसके सारे शरीर में छाया हुआ है।

एक सिंगापुरी बेंत की कुर्सी को खींच कर थकी-मांदी विमला छत के पश्चिम वाले कोने में बैठ गयी। धीरे-धीरे आकाश में चाँद छिपता जा रहा था। चाँद के डूबने से पहले क्या विनोद नहीं

आ सकता, क्या मालूम !

विमला के गाल पर पङ्ख मारता हुआ एक चिमगादड़ उड़ गया। इस जानवर के प्रति स्वाभाविक चिढ़ की वजह से उसने फौरन ही अपना गाल पोंछा। लेकिन चिमगादड़ का कोमल स्पर्श उसे बुरा नहीं लगा। इस चाँदनी रात के मोह ने चिमगादड़ को भी चंद्राहत कर दिया, शायद विमला के कमरे की रोशनी में वह रास्ता खो बैठा था।

वहाँ बैठे-बैठे विमला ने देखा कि उसका और चिमगादड़ का चाँद देवदारू के पीछे चला गया है। बादलों ने उसे चारों ओर से घेर कर आडम्बरहीन विदा देने का निश्चय किया है। मानों इस बात से देवदारू के रजतशील वृक्षों को भी बेहद खुशी हो रही है। पुकारते-पुकारते अब झींगुर भी थक कर एकाएक चुप हो गये हैं। अब फिर चारों ओर पूर्ण शांति है, अखण्ड जड़ता है।

जीने पर सीता मेहरी के पैरों की आहट सुनायी पड़ी। चारों तरफ की बिजलियाँ बुझाकर वह छत का दरवाजा बन्द करने आयी है। विमला ने कहा—'दरवाजा खुला रहने दो, अभी मैं यहाँ हूँ।'

चारों ओर अन्धकार है। सिर्फ विमला के कमरे में हरी रोशनी जल रही है। चन्द्रमा का अन्तिम क्षण, मानो चन्द्रमा भी स्थिर है, उसके पास रहने के लिये जैसे पृथ्वी क्रमशः उसके निकट आ रही है।

तन्द्रातुर विमला ने नींद का जाल काटने के लिये फिर टहलना शुरू किया। उसके शरीर पर पीले चाँद की ज्योति एक अनोखी

शोभा दे रही है। मृदु पदों से संचरणशीला विमला की वह स्वप्न जैसी मूर्ति मानो किसी देवी की प्रतिमा की तरह स्वर्गीय ज्योति से चमक रही है।

अन्धकार से ढँका हुआ सारा मकान प्रेतपुरी की तरह निर्जीव और शांत है। शायद आस-पास कहीं वारिश हुई है, हवा में गीली मिट्टी की बू है, रात भी ठण्डी है। कभी-कभी हवा के झोंके से पेड़ के पत्ते हिल जाते हैं और पत्तों का स्वर झंकृत हो उठता है। इसी समय एकाएक एक पक्षी पुकार उठा और फिर चुप हो गया। अमृत का पात्र मानो क्षण भर में ही विषाक्त हो गया। फिर पहले जैसी शांति।

उत्कंठ आग्रह से विमला आकाश की ओर देख रही है। बीच-बीच में सड़क पर जाने वाली दो-एक मोटरों की आवाज भी सुनाई पड़ जाती है।

दूर, बहुत दूर, जहाँ धरती और आकाश मिल रहे हैं, वहाँ एक रोशनी जलती है और फिर बुझ जाती है। शायद किसी विज्ञापन का कौशल है अथवा दृष्टि भ्रम। वहीं तो शहर की सीमा है।

विमला यह जानती है कि शहर में विनोद को क्या काम है। काम कुछ ऐसा जरूरी नहीं है। असली बात तो वह औरत है।

एक दिन कुछ देर के लिये ही उसने उस स्त्री को देखा था। घुँघराले बाल, पतले-पतले होंठ, माथे पर छोटी-सी लाल बिन्दी, कानों में चमकदार झुमके, गले में पतली-सी सोने की चेन और सुरमा लगी हुई आँखों में करुणा या कोमलता की जरा-सी भी

झलक नहीं—बल्कि उनमें थी मादकता और वासना की उत्तप्त आग।

उस मायाविनी के फंदे में फँस कर विनोद सब कुछ भूल गया है, सब कुछ खो बैठा है।

•

दूसरी रात को विमला छत पर आयी। लेकिन आज आकाश वैसा निर्मल नहीं है। सफेद मेघों से ढँका हुआ आकाश मानो परियों का देश जैसा हो रहा है। मेघों के ऊपर मेघ आकर चाँद को ढक रहे हैं। लेकिन चूँकि आकाश में चाँद है, इसलिये ही बादलों का रंग उजला है।

आज विमला तेजी से टहल रही है। चौकीदार की कोठरी में रोशनी है, बीच-बीच में हँसी का स्वर भी गूँज जाता है। हर रोज वे इसी तरह हँसते हैं, शोर मचाते हैं, भागवत का पाठ करते हैं और प्रेम के गीत गाते हैं। दिन का दासत्व खत्म होने पर मुक्ति का यही आनन्द है। पर आज विमला को यह कलरव अच्छा नहीं लगता। विनोद को चाहिये था कि गैरेज से भी दूर इन लोगों की कोठरी बनवाता, ताकि न इन लोगों की सूरत नजर आती और न कुछ सुनाई ही पड़ता।

आज मेंढक और झींगुरों की आवाज कल से भी ज्यादा तेज और कर्कश है। ऐसा लगता है जैसे एक दूसरे की आवाज दबाने की परस्पर होड़ लगी हुई है। बहुत कुछ युक्तिहीन मानवीय तर्क की पुनरावृत्ति की तरह।

आज पेड़ के पत्तों पर चन्द्रमा की छाया अभी तक नहीं उतरी

है। अपने हाथ ऊपर उठा कर आज विमला ने चाँद पकड़ने की कोशिश नहीं की। कल रात को विमला की आँखों के कोर में अश्रु छिपे हुये थे, क्योंकि विनोद के वापस आने की आशा थी। लेकिन आज उसके पैर तेज और चंचल हैं। अपने उमड़ते हुये आवेग न सम्भाल सकने के कारण शिशु की तरह वह रो पड़ी।

आज वह जानती है कि विनोद नहीं आयेगा। इस वक्त वह किसी एक सुन्दर और सुसज्जित कमरे में, जिस कमरे को शायद विमला कभी भी नहीं देख सकेगी, उस स्त्री के मोह में समाज, परिवार, संस्कृति और सारी दुनिया को भूल कर आनन्द में पागल हो रहा होगा, वासना ने अन्धा बना दिया होगा।

विमला का यह कमरा कौन-सा खराब है। साफ-सुथरा और करीने से सजा हुआ यह कमरा विद्युत के हरे प्रकाश से चमक रहा है। खिड़कियों के आसमानी रङ्ग के पर्दे हवा में उड़ रहे हैं। सफेद बिछौना माँ की गोद की तरह कोमल और रमणीय है।

फिर विमला—शरीर में कांति, आँखों में स्निग्ध मधुरिमा, परिधान में बिना किसी प्रकार की तड़क-भड़क वाली सफेद मलमल की धोती और उसके भीतर है शुभ्र, शुचि हृदय। उसके शरीर का रंग जैसा उज्ज्वल है, वैसा ही उसका मन निर्दोष है—मानो ग्रीष्म-संध्या का अर्द्ध प्रस्फुटित रजनी-गंधा का फूल।

तो भी, इस दुनिया में वह एकदम प्रयोजनहीन और बेमतलब है। यह कोठी, साज-सामान, नौकर-चाकर, बस सब उस तृतीय प्राणी का है। अर्थात् विमला की अपेक्षा उस स्त्री का अधिकार ही ज्यादा है। शायद एक दिन इस कोठी पर भी उसका कब्जा

हो जायगा। इस छत पर उसी की पद-ध्वनि सुनाई पड़ेगी।

कैसी मनहूस और सुनसान रात है! झींगुरों का संगीत भी इस सन्नाटे को नहीं भेद सका। चिमगादड़ का वह कोमल स्पर्श कहाँ है! यह रात तो मानो अपने आप में ही परिपूर्ण है।

दुखी स्त्री बहुमूल्य गहनों के जरिये अपने हृदय की वेदना छिपाने की कोशिश करती है, बाहरी आकर्षण बढ़ाने के लिये ही तो उसे प्रसाधनों की जरूरत होती है। उसी तरह इस खराब रात की मनहूसियत छिपाने के लिये ही तो इन फूलों की सुगन्ध का प्रयोजन था। पर किसी न किसी वक्त नाली, डस्टबिन या मरे हुये चूहे की बू चारों ओर फैलेगी ही, फूलों की सुगन्ध से उसे नहीं दबाया जा सकता।

आज की यह रात बहुत खराब और खोयी हुई सी है। विमला के मन की चंचलता और पैरों की तेज गति उसे थका रही है। उसका माथा, बगल और वक्ष पसीने से भींग गये हैं।

आज रात को मेहरी के रोशनी बुझा देने पर सारी कोठी प्रेतपुरी जैसी हो गयी है। परियों की राजपुरी जैसी नहीं, बल्कि सम्पूर्ण मृत। चौकीदारों का शोर-गुल खत्म हो चुका है, शायद वे भी सो गये हैं।

इस रात की यह अनन्त शांति विमला को अभिभूत कर रही है, और वह स्वयं को अत्यन्त दुर्बल, एकदम असहाय समझ रही है। पर जो कमजोर प्राणी विमला के नाम से परिचित है, उसके दुर्बल शरीर में क्रमशः शक्ति और सामर्थ्य आ रही है। देवदारू के ये पेड़ तथा कोठी की चहारदीवारी से बाहर निकल

कर और एक दूसरे प्राणी ने उसके मन पर अधिकार जमा रखा है।

जो सुन्दर शरीर, जो निर्दोष मन लौकिक जगत में विमला के नाम से परिचित है, उसे क्या शहर की गन्दी और पतित नारी ने ग्रास कर लिया ? आज दो दिन से, दो रातों से, विनोद की तरह उसके कन्धों पर भी वह कलंक की प्रेतात्मा आ बैठी है।

इसीलिये, आज मेहरी के रोशनी बुझा देने पर फूलों की सुगंध को दबाती हुई नाली और डस्टबिन की सड़ी हुई बदबू जिसके मन में आयी, उसका नाम शायद विमला कभी नहीं था। विमला का वह सरल, निर्दोष चेहरा स्वाभाविक कठोरता से पूर्ण है। उसके मन में एक अशांत संग्राम चल रहा है, और उस मूक संग्राम की भयावह मूर्त्ति जैसे इस अंधकार में प्रगट हो रही है। जो नारी दूसरों की स्नायु और अर्न्तवेदना को भूलकर अपनी कामना की अग्नि में किसी दूसरे का सुख और शांति भस्म करती है, उसी की उस अदृश्य आत्मा के कठोर प्रहार से विमला जर्जरित है।

विमला अब एक पैर भी आगे नहीं बढ़ सकी। थके हुये शरीर से एक हारे हुए मुसाफिर की तरह रेलिंग का सहारा लेते हुये बड़ी मुश्किल से खड़ी रही, जैसे पैरों के नीचे से जमीन खिसकी जा रही है।

सारा शरीर पसीने से तर है, जैसे वह अभी-अभी चूल्हे के सामने से उठकर आयी हो। इस सन्नाटे में सिर्फ हृदय की द्रुत स्पंदन ध्वनि सुनाई पड़ती है।

इसी तरह थकी और खोयी हुई-सी विमला बहुत देर तक

खड़ी रही। और ऐसे ही दो रातें बीत गयीं, विधाता के निष्ठुर परिहास और आँख मिचौनी के खेल में। दुःख और वेदना में दिन बीते। अब मन में विचारों का प्रवाह तरंगित नहीं होता। अब उसे कोई चिन्ता नहीं है। वह अँधेरे में रास्ता खो बैठी है।

चाँद छिप गया है। रात के कुहासे से ढका हुआ आकाश प्रभात के प्रकाश के स्पर्श से उज्ज्वल और निर्मल हो उठा है। थके और अलसाये हुए शरीर से वह कमरे में घुसी और तेजी से बिछौने पर पड़ गयी।

सीता मेहरी हर कमरे की खिड़की और दरवाजा बन्द कर रही थी। रोशनी बुझा रही थी क्योंकि रात के ग्यारह बज चुके हैं। तीसरी रात भी सन्ध्या बिता कर मध्य प्रहर में आ पहुँची।

आज भी सारी कोठी में खामोशी है। सन्ध्या के समय मित्रों के आगमन से कोठी के उदास चेहरे पर जरा भी प्रसन्नता की झलक नहीं आयी है। मेहरी को भी शायद डर लग रहा है, नहीं तो वह इतनी जल्दी-जल्दी और आश्चर्य के साथ रोशनी क्यों बुझा रही है। अन्धकार से इतना डर!

विमला को ऐसा लगा कि इस दीप-निर्वाण के साथ साथ ही कोठी की सारी आत्मा का भी अंत हो गया, और इसके साथ-साथ ही विमला की भी मृत्यु हो गयी। रास्ते का अंधकार देवदारू के वृक्षों में मिल रहा है, और वही अंधकार सारे आकाश में फैल गया है। इन सब के मिलन से ही रात की अखण्डता है।

ऐसी अँधेरी रात विमला ने कभी नहीं देखी। यदि हवा न चलती होती तो शायद पेड़ पत्ते भी न पहचाने जाते। पश्चिम दिशा में झुण्ड के झुण्ड काले बादल जमा हैं और बीच-बीच में बिजली चमक जाती है।

इस अन्धकार में विमला के गोरे-गोरे हाथों को भी कोई नहीं खोज सकता। धोती के साथ-साथ वे भी अन्धेरे में मिल गये हैं। अन्धकार—पुरातन पृथ्वी से भी ज्यादा प्राचीन, कितनी हजारों रातों के बाद सृष्टि की प्रथम उषा का अभ्युदय हुआ था। रवि-रश्मियों के ज्योतिर्मय प्रकाश ने सारा अन्धकार दूर किया। रात की यह वीभत्स, भयानक मूर्त्ति, यह आकृतिहीन विराट दैत्य मानो शून्य में अपना संचालन कर रहा है। विमला ने डर से आँखें मूँद लीं। पर वही अन्धकार जैसे उसे चिढ़ा रहा है, विमला ने फिर आँखें खोलीं।

ऐसी रात में सड़क पर कुत्ते जोर-जोर से भूंक रहे हैं। बड़ी सड़क पर दो मोटरें बहुत तेजी से चली गयीं। बहुत आवाज हो रही थी। एकाएक विमला को ऐसा लगा जैसे किसी ने सदर दरवाजा खोला, एक अस्पष्ट छाया मूर्ति आँगन के भीतर आकर चुपचाप खड़ी हो गयी।

विमला खुशी से नाच उठी। इस अन्धकार की भयानकता भूल गयी। भूल गयी गत तीन रातों की असह्य ज्वाला। विनोद लौट आया है, इस ख्याल से विमला पागल हो गयी। चौकीदार भागवत पढ़ रहा है, और इधर 'साहब' आकर खड़े हुऐ हैं—इसका कुछ ख्याल नहीं। विद्युत गति से विमला नीचे

उतरी। उसके आँसू सूख चुके हैं। वह घृणा और ईर्ष्या कहीं गायब हो गयी है। विनोद आ गया है, इसी में उसे आनन्द है।

सदर दरवाजे के नजदीक पहुँच कर विमला ने चारों ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखा, कहाँ, कहीं भी तो कोई नहीं है। छीः, तो क्या वह पागल हो गयी। अपने भ्रम से वह इतनी दूर चली आयी है। छाया मूर्त्ति उसका एक भ्रम था, इसमें सन्देह नहीं। उदास और निराश होकर विमला लौटने ही वाली थी कि उसी वक्त सामने वाले नीम के पेड़ के नीचे जैसे किसी बहुत भारी चीज के गिरने की आवाज हुई और उसके साथ ही साथ किसी ने दर्द से कराहा, और फिर चुप हो गया।

नीम के पेड़ की ओर तेजी से बढ़ कर विमला ने अपरिचित व्यक्ति को बहुत गौर से देखा। फिर कड़ी आवाज में पूछा—'इस वक्त यहाँ क्या कर रहे हो? क्या इरादा है?'

अपरिचित व्यक्ति ने काँपते हुए स्वर में उत्तर दिया—'मैं जानता हूँ, मैंने गलती की है। लेकिन मैं सिर्फ मुसीबत में ही नहीं हूँ, बल्कि हर तरह से लाचार हूँ। इच्छा न रहते हुए भी आपकी कोठी में घुस पड़ा। शहर के सब पुलिस वाले पागल कुत्ते की तरह मेरा पीछा कर रहे हैं—पकड़ने के लिये।'

'पर यह पुलिस सुपरिनटैंडेंट की कोठी है।'

'मुझे भी कुछ ऐसा ही शक हुआ था, पर ठीक से पता न था। अब अच्छी तरह मालूम हो गया।'

'तुम क्या चाहते हो?'

'कुछ नहीं चाहता। चार महीनों से पुलिस वालों ने मुझे नजरबन्द कर रखा है। मेरी पत्नी बीमार है, मौत की घड़ियाँ गिन रही है। उसकी ओर से दर्जनों दरख्वास्तें दी गयीं, पर कोई सुनवाई नहीं हुई। जब मैंने 'पैरोल' पर भी छुटने की आशा नहीं देखी तो भाग—'

'भाग निकले। पर वहाँ तक पैदल कैसे पहुँचोगे? स्टेशन पर ही पकड़ लिये जाओगे न?'

'उस वक्त यह नहीं सोचा था, अब ख्याल आया।'

'भागते वक्त इसका ख्याल नहीं था? मोटरबाईक चलाना जानते हो?'

'जानता हूँ। लेकिन आप...?'

'मैं एस० पी० की पत्नी हूँ। पर इस प्रश्न की जरूरत नहीं, मेरे साथ आइये।'

वह व्यक्ति विस्मित हो विमला के पीछे-पीछे चला। उस समय वह आशा-निराशा के झूले में झूल रहा था।

गैरेज का दरवाजा खोलकर विमला ने दृढ़ स्वर में कहा—'जाइये। चुप क्यों खड़े हैं?'

मन्त्रमुग्ध की तरह उस व्यक्ति ने विमला की आज्ञा का पालन किया। धन्यवाद देने के ख्याल से जबान खोलते ही विमला ने रोकते हुये कहा—'वक्त बहुत कम है। अभी कुछ देर बाद ही जोरों से वारिश होने वाली है। अब आप जरा भी देर न करें।'

जोर की आवाज़ से वायुमण्डल को विदीर्ण करते हुये वह

व्यक्ति बाईक सहित अन्धकार में अदृश्य हो गया। विमला दौड़ती हुई लौटी और बिस्तरे पर आकर गिर पड़ी।

थकावट और अवसाद से उसका शरीर पहले ही चूर-चूर हो रहा था, और अब एक अनजान आशंका से वह और भी घबड़ा गयी।

पर उस रात को विमला को नींद आयी। काली छाया जैसा घना अन्धकार है—इस अन्धकार में विमला को रास्ता नहीं मिलता। यह अन्धकार मानों विमला के सारे जीवन को धीरे-धीरे ग्रास करने आ रहा है।

भय से, आतंक से विमला चीख उठी।

विवाह : एक प्रयोग

मि० भटनागर कुमार हैं, अर्थात् अविवाहित। बहुत से व्यक्ति ऊपर से तो कहते हैं कि शादी नहीं करेंगे, लेकिन मन ही मन उनकी इच्छा रहती है। पर मि० भटनागर इस तरह के व्यक्ति नहीं हैं। वे वास्तव में विवाह नहीं करना चाहते। इसका कारण सिर्फ उनका सेंटीमैंटल होना ही नहीं है। बल्कि सुदृढ़ सोशियो - इकॉनोमिक सिद्धांत और तर्कों पर उनका एतराज कायम है।

लेकिन इससे क्या होता है। परिचित, अपरिचित, कोई भी मि० भटनागर की बातों का विश्वाश नहीं करता। कोई

कहता, उनके मन पसन्द लड़की नहीं मिलती। दूसरे कहते हैं, कोर्टशिप का मौका नहीं मिलता। कोई कहते अच्छी-सी चिड़िया नहीं फँसती। यह कहने वालों की भी कमी नहीं है कि इसकी जड़ में एक न एक गुप्त बात अवश्य है।

धीरे-धीरे विवाह के प्रस्ताव आने लगे। रास्ते में, ट्राम में, बस में, पार्क में यानी सब जगह किसी से मुलाकात होते ही यह प्रश्न—'आप शादी क्यों नहीं करते ? एक बहुत अच्छी लड़की मेरी नजरों में है, आपके ही लायक है', आदि। ऐसी ही बातें सुनते-सुनते मि० भटनागर परेशान हो गये थे।

मि० भटनागर ने एक तरकीब सोची। अब किसी से इन्कार नहीं करेंगे। लड़की की तारीफें सुन, उसमें एक न एक दोष निकाल कर प्रस्ताव नामंजूर कर देंगे। अब अगर कोई व्यक्ति विवाह का प्रस्ताव करता तो मि० भटनागर कहते—'ठीक है, अभी तो मैं जरा जल्दी में हूँ। अगले महीने के प्रथम रविवार को आप सुबह के वक्त आयें, तब बातें होंगी', सब से यही एक बात कहते। फलतः हर महीने के पहले रविवार का सुबह का वक्त विवाह सम्बन्धी तर्कों में ही कटता। कोई लड़की के चाहे कितने ही गुण क्यों न बखान करे, लेकिन मि० भटनागर उसमें एक न एक ऐसा ऐब निकालते कि प्रस्तावकारी अपने आप ही चुप हो जाता। एक भी प्रस्ताव आगे न बढ़ता। महीने का एक दिन जरूर नष्ट होता, बाकी तीस दिन बड़े मजे में कटते। फिर विवाह की इच्छा न रहने पर भी, महीने में तीन - चार घंटे की यह विवाह सम्बन्धी बातचीत ऐसी खराब भी नहीं लगती थी।

ऐसे ही एक दिन रविवार को मि० भटनागर के ड्राईंग रूम में कुछ एमेचर और कुछ प्रोफेशनल विवाह के प्रस्तावक उपस्थित थे। मि० भटनागर ने बैरा को बुलाकर सब के लिये चाय लाने का हुक्म दिया। पाकेट से सिगरेट-केस निकालकर लोगों के सामने बढ़ाया। मौका पा एक व्यक्ति ने साहस किया और मि० भटनागर से बातें करने लगा।

'यह देखिये मि० भटनागर, उस दिन जिस लड़की की बाबत मैं कह रहा था, यह उसी का फोटो है।'

मि० भटनागर—'नाक तो बहुत चिपटी है। ऐसी मंगोल टाइप लड़की मैं नहीं चाहता। मुझे यह पसन्द नहीं है।'

'जी, फोटो में ठीक-ठीक शक्ल नहीं आयी। आप स्वयं ही एक दिन लड़की को देखने चलिये, मि० भटनागर!'

'इसकी क्या जरूरत है? फोटो से एक आइडिया हो गया।'

'अच्छा तो—'

'अब आप इस प्रोपोजल की चर्चा न करिये मुझे दूसरों से भी बातचीत करनी है।'

'एक लड़की और भी है, लेकिन इस वक्त उसकी फोटो मेरे पास नहीं है। वह पटना में है।'

'बहुत अच्छा, उसके सम्बन्ध में अगले महीने में बातें होंगी।'

'अच्छा साहब, नमस्ते।'

दूसरा व्यक्ति फोटो दिखा कर बोला—'यह लड़की आपको पसंद आयेगी। जरा गौर कीजिये, चेहरे पर कैसी सौजन्यता और ताजगी है।'

'पर होंठ जरूरत से ज्यादा बड़े और मोटे-मोटे हैं।'

'जी नहीं, फोटो में ऐसा लग रहा है। मैंने तो खुद लड़की देखी है। बहुत सुन्दर होंठ हैं, मानो नारंगी की दो फाकें हों।'

'आप कुछ भी कहें, मुझे तो पसंद नहीं।'

'तो?'

'मुझे आपका प्रस्ताव रिजैक्ट करना पड़ता है।'

'अच्छा, यह देखिये, दूसरी फोटौ ...'

'लेकिन आज नहीं। अगले महीने तशरीफ लायें। ये दूसरे लोग भी तो वैठे हैं, इनसे भी तो बातें करनी हैं।'

'अच्छा, नमस्कार! अगले महीने फिर मिलूँगा।'

तीसरा व्यक्ति—'इस तसवीर को जरा देखिये! कैसी संदर है! आपको पसंद है?'

मि० भटनागर फोटो देखकर बोले—'हाँ, अच्छी ही नजर आती है। लेकिन उम्र?'

'सिर्फ इक्कीस साल की है! इसके मां-बाप तो कम बताते हैं, पर मैं आप से झूठ न बोलूँगा। अभी फरवरी से ही इक्कीसवाँ लगा है।'

'आपकी अक्ल क्या घास चरने गयी है?'

'क्यों साहब, क्या हुआ?'

'आपका ख्याल है कि मैं इक्कीस साल की लड़की से शादी करूँगा? मैं अट्ठाइस वर्ष का हूँ, जानते हैं?'

'आप क्या कह रहे हैं जनाब! इक्कीस बर्ष की लड़की? आपसे सात साल छोटी है।'

'उम्र में इतना ज्यादा फर्क होने पर मन नहीं मिलता।'

'यह बात आपसे ही सुनी। मेरी पत्नी तो मुझसे चौदह साल छोटी है। आज बीस वर्ष से हमलोग एक साथ ही रह रहे हैं, बाल पक गये।'

मि० भटनागर—'साथ - साथ रहने से ही मन के मिलने का प्रमाण नहीं मिलता। मन मिल जाय तो एक ग्रीनलैंड में और दूसरा आस्ट्रेलिया में भी रहे तो कोई फर्क नहीं पड़ता।'

'क्या मालूम, आप जैसी अक्ल तो हम में है नहीं। हम तो पुराने जमाने के आदमी हैं। तो—'

'बहुत अच्छा, नमस्ते।'

'सुनिये, एक लड़की और है, उसकी उम्र शायद आपके बराबर ही है।'

'और यदि कुछ कहना हो तो अगले महीने आयें।'

'अच्छा, नमस्ते!'

चौथा व्यक्ति—'देखिये, इस लड़की को आप पसंद किये बिना नहीं रह सकते। अट्ठाइस साल की है।'

मि० भटनागर—'वजन?'

'एक मन तेरह सेर।'

'तब तो नहीं होगा। मेरा वजन एक मन पच्चीस सेर है।'

'अजी साहब, वजन से क्या आता जाता है।'

'जिसका वजन कम होता है, उसके मन में शरीर की शक्ति और वजन के सम्बन्ध में एक 'इनफीरियरिटी कंप्लैक्स' पैदा हो जाता है। और जहाँ अपने को छोटा या महत्वहीन समझने

की भावना पैदा हो जाती है—वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। डर या बहुत हुआ तो भक्ति हो सकती है, प्रेम नहीं हो सकता। फलतः—'

'लेकिन लड़कियों का ज्यादा मोटा होना क्या अच्छा है? सब लोग ही पतली और इकहरी बदन की युवतियों को पसन्द करते हैं। आधुनिक फैशन ही है—स्लिम होना।'

'पर मैं यह नहीं मानता।'

'खैर, देहली में एक लड़की और है। खूब मोटी-ताजी, उसे देखगे?'

'अब इस महीने में नहीं। अगले महीने पधारने की कृपा करें।'

'बहुत अच्छा, नमस्ते!'

पाँचवाँ व्यक्ति—'देखिये, आपको यह लड़की जरूर जँचेगी। एम० ए० पास है और मोटी-ताजी भी है।'

मि० भटनागर—'तब तो कोई फायदा नहीं?'

'क्यों साहब?'

'मैं खुद तो बी० ए० हूँ। मेरी पत्नी एम० ए० नहीं हो सकती।'

'इसमें नुकसान क्या? लड़की बहुत ही सरल और विनयी है। उसे एम० ए० होने का जरा भी घमण्ड नहीं, बातें करते ही आपको मालूम हो जायगा।'

'इससे क्या—यह शादी नहीं हो सकती।'

'आखिर, कोई वजह?'

'पति और पत्नी, अगर दोनों की शिक्षा एक स्टैंडर्ड की न हो तो उनमें प्रेम नहीं हो पाता।'

'आप तो अजीब ढङ्ग की बातें करते हैं। और किसी से तो ऐसी बातें नहीं सुनीं।'

'सुनते भी कैसे ? मन ही मन इस सत्य को अनुभव करते हुये भी क्या कोई इसे स्वीकार करता है। अपनी गलती जस्टीफाई करने के लिये लोग तरह-तरह की बे-सिर-पैर की बातें करते हैं।'

'सब गलती करते हैं ?'

'हाँ, प्रायः सब ही।'

'आप तो बहुत ज्यादा आत्मविश्वासी मालूम होते हैं।'

'खैर ! ज्यादा बहस करने से कुछ फायदा नहीं।'

'मैं बहस नहीं कर रहा। लेकिन आप जरा एक बार और सोचिये, क्योंकि लड़की बहुत अच्छी है। फिर, आप तो आक्सफोर्ड के बी० ए० हैं। वहाँ का बी० ए० यहाँ के किसी एम० ए० से कम नहीं है। इसलिये—'

'एक्सक्यूज मी ! मैं बातें बढ़ाना नहीं चाहता। मुझे पसन्द नहीं।'

'जी, जब यह पसन्द नहीं तो जाने दीजिये। लेकिन हाँ, एक लड़की और भी मेरी नजर में है। वह बी० ए० है।'

'अब आज नहीं। नयी लड़की के सम्बन्ध में आगामी माह बातें होंगी।'

छठा व्यक्ति—'मैं भी एक लड़की के सिलसिले में आपको कष्ट देने आया हूँ। शायद आप पसन्द करलें। आप उसे देखने कब चलेंगे।'

मि० भटनागर—'लड़की की आमदनी कितनी है ?'

'लड़की की आमदनी ?'

'हाँ, उसकी मासिक आय क्या है।'

'उसकी तो कुछ भी आय नहीं है। हाँ, उसके बाप की आमदनी...'

'एक्सक्यूज मी ! मैं उसके बाप की आय नहीं जानना चाहता। मुझे उसके बाप से तो शादी नहीं करनी है।'

'जी, ठीक कहते हैं। लड़की कोई नौकरी या कारबार तो करती नहीं। पर उसके पिता शादी में काफी दहेज देंगे। आप कितना चाहते हैं, कहिये।'

'वाट नानसेंस यू टाक ? मैं क्या चाहूँगा ? मैं भिखारी हूँ ?'

'अजी नहीं, यह मतलब नहीं। मुझे माफ करें, मैं आपका प्रश्न समझ नहीं सका। मैं जरा मोटी अक्ल का आदमी हूँ।'

'मेरा ख्याल है कि पति और पत्नी, दोनों की ही अलग अलग और बराबर की आय होना जरूरी है। बिना ऐसा हुए सच्चा प्रेम नहीं होता।'

'अच्छा, मैं एक लड़की को और जानता हूँ। प्रायः सात-आठ साल से हास्पिटल में नौकरी कर रही है। कहें तो उससे पूछूँ क्या तनख्वाह है ?'

'लेकिन अब आज नहीं। दूसरी लड़की के लिये आगामी महीने की प्रतीक्षा कीजिये।'

और भी कई प्रस्तावकों से इसी तरह की बातें करने के बाद मि० भटनागर ड्राईङ्ग रूम से निकल कर भीतर चले गये। एक महीने के लिये विवाह का प्रस्ताव मुल्तवी हो गया।

दूसरे महीने का प्रथम रविवार आया। प्रस्तावक ड्राईङ्ग रूम में इकट्ठे हैं। कमरे में धीरे-धीरे प्रवेश कर मि० भटनागर ने सब को नमस्कार किया और अपनी जगह बैठ गये।

पहले की तरह इस बार भी एक के बाद एक प्रस्तावक अपना अपना प्रस्ताव सुनाने लगा। लेकिन मि० भटनागर ने सब में एक न एक दोष निकालकर सब को निराश कर दिया। अन्य सब लोगों के चले जाने पर अन्तिम प्रस्तावक ने कहा—'आप बहुत 'फैस्टिडियस' हैं।'

'आप यह कह सकते हैं। हरेक की अपनी अलग राय होना मैं स्वाभाविक और वांछनीय समझता हूँ। शादी के मामले को कभी लाइटली नहीं लेना चाहिये।'

'जी हाँ। आप बजा फरमाते हैं।'

'पति-पत्नी का सम्बन्ध मालिक और नौकर जैसा नहीं, क्रेता विक्रेता का रिश्ता नहीं, डाक्टर और रोगी का सम्बन्ध नहीं, बालिग और नाबालिग जैसा रिश्ता भी नहीं—'

'कतई नहीं। इस विषय में मैं आपसे पूर्णतः सहमत हूँ।'

'खुशी की बात है कि आप मेरे विचारों को कुछ समझ सके, इसके लिये धन्यवाद।'

'कोई बात नहीं, मैं आपके विचार को पूरी तरह समझने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरी उम्र भी तो कम नहीं है। इस बीच मैंने खुद तीन बार शादी की है और प्रायः चालीस-पचास लड़कियों की शादी करायी है।'

'इसीलिये, आप मेरे मन का भाव समझ सके। कहने का

मतलब यह है कि पति - पत्नी का सम्बन्ध छोटे - बड़े का नहीं है। सब कुछ एक बराबर न होने पर प्रेम नहीं हो सकता।'

'जी हाँ। आप ठीक कहते हैं। बचपन में रेखागणित में पढ़ा था, अब तक याद है—Equal in all respects पति-पत्नी को ठीक ऐसा ही होना चाहिये।'

'आपने बिलकुल सही समझा। अब आप क्या कहना चाहते हैं?'

'जी, काफी तलाश के बाद एक लड़की मिली है। सब विषयों में ही आपके बराबर है। न तो जरा भी ज्यादा और न कम।'

'हूँ। उम्र क्या है?'

'अट्ठाईस साल तीन महीना छः दिन। आज तक की उम्र है।'

'वजन?'

'एक मन पच्चीस सेर सात छँटाक।'

'शिक्षा?'

'बी० ए०।'

'आय?'

'मासिक पाँच सौ रुपये।'

'कैसे?'

'वह अपने पिता की इकलौती संतान है। फलतः उसके बाप का आय उसकी आमदनी है।'

'ओ। देखने में कैसी है? फोटो है?'

'जी हाँ, यह लीजिये।'

'देखने में तो बुरी नहीं है।'

'तो आप राजी हैं ?'

'शादी के लिये मैं राजी कभी नहीं हो सकता। लेकिन तो भी मुझे कुछ आश्चर्य हो रहा है।'

'क्यों ?'

'बिलकुल बराबर उम्र, समान विद्या, वजन भी एक सा और आय भी बराबर, विचित्र 'कौनसीडैंस' है। देखिये, मुझे एक बात का कौतूहल है। शादी की इच्छा मेरी पहले भी नहीं थी और अब भी नहीं है। लेकिन एक साइण्टिफिक एक्सपैरिमैंट करने की बड़ी इच्छा है। Equal in all respects की शादी का क्या नतीजा होता है, इसका नतीजा संसार को दिखाने की मेरी जबरदस्त इच्छा है। शादी करने की मेरी इच्छा नहीं है। लेकिन—'

'जरूर-जरूर। साइण्टिफिक एक्सपैरिमैंट के लिये लोगों ने अपनी जान तक कुर्बान कर दी है। आप तो एक मामूली शादी करेंगे।'

'अच्छा, मैं सोचूँगा।'

'फिर मिलूँगा, नमस्ते।'

प्रस्तावकारी महोदय चले गये। मि० भटनागर सोचने लगे। अन्त में एक्सपैरिमैंट करने का ही निश्चय हुआ। लड़की देखी गयी। जन्मपत्री से उम्र स्थिर हुई। यूनिवरसिटी कलैंडर में बी० ए० का रिजल्ट देखा गया। घुमाने के बहाने मार्केट की मशीन में वजन भी वैरीफाई कर लिया गया। यानी प्रस्तावक की सब बातें ही बिलकुल सच निकलीं। फलतः मि० भटनागर के एक्सपैरिमैंट के रास्ते में किसी भी प्रकार की रुकावट नहीं रही।

शुभ दिन और शुभ मुहूर्त में विवाह हो गया।

निमंत्रण, दावत और हो-हल्ला इत्यादि सब कुछ हुआ। मि० भटनागर को संतोष था।

भटनागर दम्पति एक वर्ष तक बम्बई, पूना, मंसूरी और नैनीताल इत्यादि जगह घूम-घाम कर विवाह के द्वितीय वर्ष के प्रथम दिन ही अपने घर लौट आये।

विवाह के द्वितीय वर्ष का पहला दिन। दोनों ही बहुत प्रसन्न हैं। संध्या हो चुकी है और वे दोनों एकांत में बैठकर प्रेमालाप कर रहे हैं। एक वर्ष मानो एक दिन की तरह कट गया। आदर्श प्रेम में डूबे हुए आदर्श दम्पति आनन्द और प्रेम में सब कुछ भूल गये हैं।

पत्नी ने पूछा—'हम परस्पर को जितना प्यार करते हैं, उतना ही प्रेम क्या और दूसरे दम्पतियों में भी होता है ?'

'ऐसा कभी हो सकता है ? हमारी तरह और दूसरे पति-पत्नी तो सब बातों में एक समान नहीं हैं।'

'लेकिन थोड़ी देर के लिये ख्याल करो कि मेरे चेचक निकल आये और मैं बदसूरत हो जाऊँ ?'

'चेचक ही क्यों निकले और तुम बदसूरत भी क्यों होओ ? और अगर ऐसा हो भी जाय तो उससे क्या बनता - बिगड़ता है ? हम लोगों का प्रेम पूर्णतः एबसोल्यूट है।'

'अच्छा, अगर मैंने झूठ बोल कर तुम्हें धोखा दिया हो ?'

'तुम धोखा क्यों देने लगीं ? और अगर ऐसा किया भी है तो क्या आता जाता है ? अपना यह मजाक रहने दो।'

मृत्यु का रहस्य

'किशन भैया-किशन भैया।'

आधी रात का वक्त था। अन्धेरे कमरे में एक ही बिछौने पर पाँच वर्ष का राजू और उसका सात वर्ष का भैया किशन सो रहा था। एक खास तरह की आवाज़ सुन कर दोनों की ही नींद खुल गयी थी। सिर्फ कान से ही नहीं, बल्कि सारे शरीर से वे उस आवाज़ को अनुभव कर रहे थे। राजू की पुकार सुनकर उसका भैया भी धीरे से बोला। राजू ने पूछा—

'यह कैसी आवाज़ हो रही है ?'

'चुप रहो ! अम्मा रो रही हैं।'

अन्धकार में राजू की आँखें विस्मय से बड़ी हो गयीं—यह

क्या ! बड़े लोग तो रोते नहीं। छोटे बच्चे ही सिर्फ रोते हैं।

फिर पूछा—'लेकिन क्यों रो रही हैं ?'

'सतीश भैया मर गये हैं न, इसीलिये रो रही हैं।'

आश्चर्य ! बड़ा ताज्जुब है ! राजू के शिशु मन में कुहासा छा गया। चारों ओर अन्धेरा है, उसके शिशु-मन में भी अन्धकार है। इस अन्धकार को अम्मा का क्रन्दन तेज चाकू की धार की तरह भेद रहा है, और इस अनजान रहस्य के सामने शिशु की विस्फारित आँखें हैं।

मृत्यु ! क्रन्दन ! ख़ामोशी !

कुछ दिनों पहले सतीश भैया बीमार पड़े थे। लड़ाई-झगड़ा, खेल-कूद, हँसना-रोना—यह सब बन्द कर वे चुपचाप बिछौने पर पड़े रहते थे। अम्मा उन्हें सब से अलग रखती थीं और खुद उनके सिरहाने खाट पर हमेशा बैठीं रहती थीं। इस कारण राजू और किशन कुछ दिनों से अलग सोते थे। राजू को पहले तो यह बहुत बुरा लगा—अम्मा तो उसी की हैं, वह सबसे छोटा है। सतीश भैया तो बड़े हैं, फिर उन्होंने अम्मा पर अपना दखल क्यों कर रखा है। लेकिन उन्हें देखकर न जाने क्यों दया आती थी। बीमार पड़ने पर तकलीफ होती है, वह जानता था। दो चार दिन अम्मा उसी के पास रहीं। आह ! सतीश भैया का मुँह एक-दम सूख गया है, पीला पड़ता जा रहा है !

पर वह यह नहीं जानता था कि बीमार पड़ने पर आदमी मर भी जाता है ! मरने का मतलब क्या है ? किसी के मर जाने पर

रोना पड़ता है ? अम्मा को तो किसी ने मारा नहीं, डाँटा-फटकारा भी नहीं—तब फिर वे क्यों रोती हैं ?

यह सवाल उसके दिल में बार-बार उठ रहा है, लेकिन कह नहीं पाता। इस अन्धकार में अम्मा के क्रन्दन के अलावा मानों और किसी तरह की आवाज का स्थान नहीं है।

अब राजू से चुप न रहा गया। धीरे-धीरे बोला—'मर गये तो अब रो क्यों रही है ?'

'तुम नहीं जानते ? मरने का मतलब है चला जाना, फिर लौट कर नहीं आना। सतीश भैया अब नहीं आयेंगे।'

'कहाँ चले जाते हैं ?'

'भगवान ले जाते हैं। चुप रहो और अब मत बोलो।'

रोना न जानते हुये भी मृत्यु को मौन गम्भीर द्वारा ग्रहण करना होता है, राजू यह जान गया है।

राजू चुप हो गया। सतीश भैया को भगवान ले गये। फिर सब लोग यह क्यों कहते हैं कि भगवान अच्छा है ? अम्मा तो हर रोज ही भगवान की पूजा करती हैं ?

यह सोचते - सोचते शायद राजू सो गया। सतीश भैया को कब उठा ले गये, उसे यह नहीं मालूम। सुबह उठ कर उसने यह देखा कि सतीश भैया नहीं हैं—भगवान उठा ले गये।

लेकिन न जाने क्यों उसे यह रोज ख्याल होता है कि वे लौट आयेंगे। राजू की फिरकनी में डोर नहीं थी, इस कारण उसे रोता हुआ देख कर सतीश भैया ने अपनी फिरकनी उसे दे दी थी और कहा था—मैं तेरे लिये और ला दूँगा। अब अगर वे नहीं

आयेंगे तो कौन ला कर देगा ? और माँ तो अब भी भगवान की पूजा करती हैं। भगवान उन्हें जरूर ही लौटा देंगे। यह सोच कर ही राजू ने सतीश भैया को लौटा देने के लिये कई बार भगवान से प्रार्थना की है।

नहीं, उसके लिये फिरकनी लाने के लिये नहीं। सतीश भैया के बिना उसे कोई बहुत ज्यादा तकलीफ़ होती हो—इसलिये भी नहीं। अम्मा को रोता हुआ देख कर दुःख होता है, जब वे फूट-फूट कर रोती हैं। खाते-पीते, बैठते-उठते, सोते-जगते उन दोनों भाइयों को प्यार करती हैं, लेकिन उस वक्त भी वह सिसक-सिसक कर रोती ही रहती हैं।

मृत्यु के रहस्य के बारे में राजू कुछ भी नहीं जानता। लेकिन अम्मा के हृदय की असहनीय वेदना को समझता है। उस वेदना की तरंगें उसके बाल हृदय में आघात पहुँचाती हैं। दोनों हाथ जोड़ कर कहता है—'हे भगवान! सतीश भैया को अम्मा को ही लौटा दो न।'

लेकिन उसे रोना नहीं आता।

पास-पड़ोस की सब औरतें अम्मा के पास आती हैं। आँसू बहाती हुई सब की सब सतीश भैया के बारे में ही बातें करती हैं—ऐसा अच्छा बेटा बार-बार नहीं मिलता। अपने आँचल से वे माँ के आँसू भी पोंछती हैं। राजू से यह सब नहीं देखा जाता। वह इधर-उधर भाग जाता है और रोने की कोशिश करता है। सतीश भैया की बातें सोचता है—माँ से शिकायत कर के उन्हें पिटवाया था। ओह, शिकायत करना ठीक नहीं हुआ। उन्होंने गुस्से में

तसवीर फाड़ डाली थी। लेकिन उसकी भी तो गलती थी। उसीने तो सतीश भैया से पहले कहा था—पाजी। वे तो बड़े भैया थे न।

और अभी उस दिन की ही तो बात है। उन्होंने दो चाकलेट के लिये उसकी कितनी खुशामद की थी, लेकिन राजू ने उन्हें एक से ज्यादा नहीं दी।

ऐसी ही बहुत-सी बातें उसे याद आती थीं। सतीश भैया के लिये उसके दिल में दर्द होता है, और मन ही मन प्रतिज्ञा करता है कि अब उनसे कभी नहीं लड़ेगा। लेकिन अनभिज्ञ हृदय में शोक का कम्पन नहीं होता, आँखों में आँसू नहीं आते।

किसी-किसी दिन जब अम्मा के आँसू नहीं रुकते, तब बड़ी उम्र की कोई रिश्तेदार राजू या किशन को ला कर माँ की गोद में बैठा देती हैं—इससे अम्मा के आँसू कम नहीं होते बल्कि और भी बढ़ जाते हैं। बड़ी मुश्किल से वे शांत हो पाती हैं। राजू को ऐसा लगता है जैसे बन्द कमरे में धुँआँ—लेकिन दरवाज़ा नहीं खुलता।

सतीश भैया के खिलौने, स्लेट और किताब, हाफ पैंट और कमीजों को एक पोटली में बाँध कर अम्मा ने रख दिया है, राजू को इसकी ख़बर भी नहीं। कभी-कभी उसे ख्याल आता है—सतीश भैया के खिलौने, कपड़े और किताबें—ये सब कहाँ गये? यह भी एक गोरखधन्धा है, जो उसकी समझ में नहीं आता।

रात को कभी-कभी नींद में अम्मा राजू को छाती से चिपटा लेती हैं। राजू चौंक कर जाग जाता है, लेकिन कुछ बोलता

नहीं। ऐसा लगता है जैसे सतीश भैया आ गये हैं, मानों वे माँ के पास ही हों—माँ के शरीर से आये थे और फिर माँ के शरीर में ही चले गये। मानों वे कह रहे हैं—राजू जानते हो, भगवान-वगवान कुछ नहीं है, मैं अम्मा के पास फिर लौट आया हूँ।

राजू को ऐसा लगता है जैसे सतीश भैया उसे बुला रहे हैं—आओ मेरे साथ कैसा आनन्द है। क्रमशः यह क्या हो रहा है! मानों वही सतीश भैया हो !...

... अगाध समुद्र, लहरों का गर्जन। आकाश नहीं सिर्फ पानी और धीमी - धीमी रोशनी। माँ की गोद जैसा स्निग्ध, निर्भर-शील और अन्तहीन जल में राजू अकेला डूब रहा है। आस पास कहीं भी कोई नहीं है, चारों ओर निस्तब्धता है। लेकिन राजू को जरा भी डर नहीं लग रहा है। अपने हाथ फैला कर वह ऐसे आत्म-समर्पण कर रहा है जैसे माँ की गोद में जा रहा हो। नहीं, गोद में नहीं—इससे भी ज्यादा अन्तरंग में और ऊपर धीमा प्रकाश है—माँ के प्यार भरे चुम्बन जैसा मधुर।

माँ की गोद जैसा पानी और माँ के दुलार भरे चुम्बन जैसा प्रकाश—इन दोनों के बीच वह जैसे खोया जा रहा है।

'सतीश सतीश'

'ओह ! क्यों तंग करते हो। अब मैं क्या लौट सकता हूँ। मैं तो खोया जा रहा हूँ। तुम लोगों के रोने के लिये मैं क्या करूँ ?' राजू समझ रहा है, इस वक्त तो वह सतीश हो गया है न।

'सतीश।' माँ के करवट बदलने से राजू जग गया। कुछ देर उसे यह सोचने में लगी कि वह फिर कैसे लौट आया ? वह राजू

है या सतीश ? इधर नींद में माँ पुकार रही हैं सतीश को—मरे हुये सतीश को। राजू डर गया। जोर से अम्मा को पुकारा—माँ !

अम्मा के दोनों गाल और तकिया आँसुओं से भीग गये। क्या जाने, वे स्वप्न में क्या देख रही थीं। पुकार सुनते ही वे राजू के सिर और पीठ पर हाथ फेरने लगीं। पूछा—'डर गये थे ?'

'नहीं। अम्मा , तुम्हें पता नहीं सतीश भैया आये थे।'

'तुमने भी उसे देखा और मैंने भी।'

दोनों में से किसी की भी आँखों में नींद न थी। राजू जान गया, अम्मा चुपचाप आँसू बहा रही हैं। अम्मा के स्पर्श से भी मानों रोना निकल रहा है। शायद वे यह चाहती हैं कि राजू भी उनके साथ रोये। लेकिन उसे रोना आता ही नहीं, बेचैनी बहुत होती है।

'क्यों राजू, सतीश भैया तुझे खूब प्यार करते थे न ?'

'हाँ अम्मा ! उन्होंने मुझे अपनी फिरकनी दी थी, और कहा था कि तेरे लिये ला दूंगा।'

फिर दोनों चुप हो गये। कुछ देर बाद माँ ने धीरे-धीरे कहा —'तुझे सतीश भैया की याद नहीं आती ?' इन शब्दों में व्याकुल विनती थी। राजू सब समझता है। कहता है—'आती है अम्मा।'

यह कहने के साथ ही उसे अपनी गलती मालूम हुई—उसकी जानबूझ कर की हुई पहली गलती। साहस कर उसने कहा— 'सतीश भैया अब नहीं आयेंगे ?'

जवाब में अम्मा रो पड़ी। राजू के माथे पर आँसू गिरे लेकिन राजू के आँसुओं पर जैसे पत्थर पड़ा हो। आह आँसू की

एक बूँद भी तो नहीं निकलती। अपने हृदय की बेचैनी से शिशु छटपटाता है।

पर आज वह दृढ़ प्रतिज्ञ है। उसकी ज़िद है—वह मृत्यु के रहस्य को जानकर ही मानेगा। इस रहस्य ने ही उसे अपनी अम्मा से अलग कर रखा है। अम्मा से राजू फिर पूछता है—'अम्मा, सतीश भैया कहाँ चले गये?'

'बेटा, उसे भगवान ले गये।'

'उनकी किताबें, कपड़े और खिलौने का बक्स?'

'वह अपने साथ भगवान के पास ले गया।'

'सब ले गये? तो फिर अब लौट कर नहीं आयेंगे?'

पत्थर में दरार पड़ी। बादल उमड़ आये हैं। राजू की आवाज काँप गयी। माँ की आवाज में विस्मय—'क्यों रे, तुझे यह क्या हुआ?'

'सतीश भैया की फिरकनी?'—

पत्थर टूट गया। कोमल शरीर रोने लगा। माँ ने अपनी असहनीय वेदना का भार एक बार और हल्का कर लिया। अम्मा से बिछुड़े हुये शिशु ने मानों अम्मा को फिर से पा लिया। और माँ को जैसे एक ही दर्द से पीड़ित एक साथी मिल गया। राजू को छाती से चिपटा कर उसे प्रथम सांत्वना मिली।

मिट्टी के दो प्राणियों के पैरों में मृत्यु अपने अपार रहस्य लिये पड़ी रह गयी।

—

छायाचित्र

एक दिन यह इस महानगरी का बहुत छोटा सा मुहल्ला था। उस समय यहाँ श्रमिकों की बस्ती थी।

लेकिन जनसंख्या बढ़ने के साथ-साथ शहर भी बढ़ता गया तो इस बस्ती के झोपड़ों को उखाड़ फका गया और देखते ही देखते उनकी जगह चार और पांच मंजिल की शानदार इमारतें खड़ी हो गयीं। एक दिन हम भी इन्ही इमारतों में से एक की नीचे की मंजिल में दो कमरों के एक छोटे से फ्लैट में आकर रहने लगे।

मकान के सदर दरवाजे का बगलवाला कमरा मैंने अपने लिये चुना; क्योंकि मेरे कमरे की आबरू

न रहने पर भी कुछ बनता - बिगड़ता नही, आस पास के लोगों की लोलुप दृष्टि से सयत्न और समय छिपाकर रखने लायक दुर्लभ रत्न अभी तक मेरे कमरे में नहीं है। मेज कुर्सी और बुक-शेल्फ वगैरह से दो-तीन दिन में ही कमरे को सजा दिया! कसरत करने के लिए मैंने एक बहुत बड़ा आईना खरीदा था। कसरत करने का शौक तो खत्म हो गया, इसलिए अब वह कमरे की सुन्दरता बढ़ाने और केश विन्यास के ही काम में आता है। मैंने उसे दक्षिण की दीवार पर टांग दिया।

मेरे कमरे के बगल में ही एक पतली सी गली है; हमारे मकान में घुसने का वही रास्ता है। दूसरी ओर आदमकद दीवार खड़ी करके मकान की सीमा और स्वतंत्रता की रक्षा की गयी है। दीवार के उस तरफ काफी जमीन खाली पड़ी हुई है। सिर्फ दीवार के एक कोने में एक पेड़ है, शायद यहाँ पहले रहनेवालों की स्मृति में खड़ा हुआ है। खिड़की से नजर दौड़ाने पर मेरी दृष्टि को यहीं आजादी मिलती है। खिड़की के ठीक सामने वाली दीवार ही वह शीशा है। नीलाकाश, पेड़ और आकाश की मेघ मालाओं की छाया शीशे में हमेशा नजर आती रहती हैं। बाहर देखने का मुझे मौका न मिलने पर भी शीशे में उनकी छाया हमेशा खेलती रहती है।

फागुन आया है। उस दिन एकाएक पेड़ पर नजर पड़ते ही देखा कि वह सूखा हुआ पेड़ हरे-हरे पत्तों से हरा-हरा हो गया है, और उसकी साख पर एक काक-दम्पति तिनकों को इकट्ठा करके अपना घोंसला बनाने में मग्न है।

देखते-देखते उनका घोंसला बन गया। जब मैंने यह गौर किया कि उनमें से एक हमेशा घोंसले में रहती है, तो समझा कि वह प्रसूता है। कुछ दिनों बाद अण्डे तोड़ शावक बाहर निकले और धीरे-धीरे बड़े होने लगे। अब माँ हर वक्त पहरा नहीं देती, उड़कर चली जाती है। खाना इकट्ठा कर जब वह घोंसले में लौटती है तो बच्चे चीं-चीं करते हैं। मेरे शीशे में उनकी सब हरकतों का प्रतिबिम्ब पड़ता है और मैं लेटा हुआ चुपचाप यह देखा करता हूँ।

एक दिन शाम के वक्त मकान में घुसते समय मैदान पर नजर पड़ी तो वह कुछ खाली-खाली सा लगा। जरा गौर से देखने पर मालूम हो गया कि पेड़ अपनी जगह पर नहीं है, उसके अतीत स्थान को घेरकर सिर्फ कुछ कौए काँव-काँव कर रहे हैं।

दूसरे दिन सुबह मैदान में कुछ शोरगुल सुनाई पड़ा। कौतूहल वश सीढ़ी पर खड़े होकर उस ओर नजर दौड़ाई। देखा कि कटा हुआ पेड़ दीवार की गोद में लुढ़क पड़ा है। कौओं के तीन-चार छोटे-छोटे बच्चे भी जमीन पर पड़े हैं। उनकी मुलायम देह धूप में सूख कर सख्त हो गयी है। ऊपर की तरफ मुँह किये वे किसी से फरियाद या प्रार्थना कर रहे हैं।

देखा, मैदान में एक तरफ ईंटें, चूना, सुरकी और सीमेंट पहाड़ की तरह जमा है। और भी नाना प्रकार की सामग्री देखकर यह समझते देर न लगी कि एक नयी इमारत की नींव पड़ चुकी है। कमजोर का बसेरा उजाड़ दिया गया है और शक्तिशाली का अभ्युत्थान होनेवाला है।

इंजीनियर और राजमिस्त्री, मोटरलारी और भैंसागाड़ी की आवाज—और कुछ ही दिनों में एक छः मंजिल की अट्टालिका सिर ऊँचा किये खड़ी हो गयी। साथ साथ सीमाबद्ध मुक्त आकाश में मेरे निराले मन का मुक्ति पथ हमेशा के लिए अवरुद्ध हो गया। आईने में आकाश के छाया चित्र चलते-चलते खो गये; सिर्फ इस नये मकान की पहली मंजिल और दूसरी मंजिल की अधिकांश छाया उसमें अचल हो बैठ गयी।

कई दिनों बाद अचल चित्र फिर चलने लगा। मकान में किरायेदारों का आना शुरू हुआ और दो-चार दिन में ही वह बिलकुल भर गया। असबाब देखकर मुझे यह मालूम हो गया कि दूसरी मंजिल के कमरे को जिन्होंने लिया है, वे शौकीन हैं? खिड़की से झाँकने की असभ्यता मैंने नहीं की, बल्कि उस कमरे में चलायमान मूर्तियों का छाया आईने में प्रतिफलित हो रही थी। और मैं लेटा हुआ चुपचाप यह लक्ष्य कर रहा था।

एक युवक और एक युवती। उम्र और व्यवहार देखकर अन्दाज़ किया कि नव-विवाहिता दम्पति हैं। उनको कमरा सजाते देख यह समझ गया कि इसमें वे ही रहेंगे, मेरे पड़ोसी हैं।

दिने बीतते जाते हैं। उनके जीवन की धूप-छाँह और हँसी खेल हर रोज शीशे में चित्रित होते थे। कभी आश्चर्य से, कभी कौतूहलवश और कभी ईर्ष्यान्वित सानन्द लज्जा से ये सब दृश्य देखता था। आकाश की लीला का अंत हुआ, कौओं का बसेरा उजड़ गया और अब मेरे शीशे में मनुष्यों का घर बसा है।

कई साल गुजर गये। अन्त में शीशे के संसार में एक शिशु

रूपी देवता का आविर्भाव हुआ। सारे दिन माँ उसे प्यार करती, खिलाती और उसकी बलैईयाँ लेती। माँ-बाप में उस शिशु को लेकर छीना-झपटी होती, हँसी-मजाक होता और कभी मान-अभिमान भी होता। प्रतिच्छाया के साथ - साथ उन लोगों की खिलखिलाहट की ध्वनि कभी-कभी मेरे कानों में संगीत की रचना कर देती। इसी तरह हँसी-खुशी में अनन्तकाल के यात्रा पथ पर संसार और भी कई कदम आगे बढ़ गया।

एक दिन शीशे के आनन्द संसार में एकाएक दुःख की काली घटा छा गयी। मैंने जरा गौर से देखा, माता-पिता का चेहरा सूखा हुआ है, चेहरे पर उदासी और आँखों में व्याकुलता है। आज कई दिनों से शिशु बीमार है।

उस दिन काफी रात को घर लौटा था। आंख लगे हुए मुश्किल से पंद्रह-बीस मिनट ही हुए होंगे कि किसी गगनभेदी आर्तनाद से अचानक नींद खुल गयी। कोई रो रहा है? कौन रो रहा है? कहाँ? पास वाले मकान की रोशनी आईने पर पड़ते ही सारी बातें समझते देर न लगी। शीशे में ही देखा कि मेरे पड़ौसी के कमरे में काफी आदमी खड़े हुए हैं और अपनी छोटी सी खटिया पर देवदूत सो रहा है। और यह भी देखा कि उस शिशु के माता-पिता रो-रोकर बेहाल हो रहे हैं।

सुबह होते ही मैं उस आईने को कपड़े से ढकने गया। हाथ लगाते ही कील मेज पर गिरी और शीशा जमीन पर गिरकर चूर-चूर हो गया।

—:★★:—

* * * * इतिहास * * *

उनका नम्बर अठारहवाँ है।

अभी सतरह आदमी और सामने खड़े हुये हैं। सुबह दस बजे से यह लाईन लगी है और अब डेढ़ बजा है। इस बीच ज्यादा से ज्यादा दो आदमियों को भीतर बुलाया गया है।

ऐसी क्या बातें हैं, कौन जाने! खोद-खोद कर जैसे सब कुछ जान लेना चाहते हैं। मकान कहाँ था, यहाँ कैसे आये, कब आये, साथ में और कौन - कान था? ऐसे ही हजारों प्रश्न। इतनी जिरह करने के बाद भी शायद संतोष नहीं होता। और भी बहुत कुछ जानना चाहते हैं। मकान और जमीन-

जायदाद का पूरा हिसाब। साथ में कुछ कागज-पत्र, दस्तावेज या पट्टा आदि भी है या नहीं।

यह सब सोचते - सोचते राल्लाराम हैरान हो गया। इतनी तहकीकात और जिरह की क्या जरूरत है। इन सरकारी अफसरों में बुद्धि नहीं है, दिमाग नहीं है? एक बार जरा आँखें खोलकर देखें तो सब कुछ अपने आप ही समझ में आ जाता है। कपड़े-लत्ते, हाथ-पैरों में जख्म और सब से ज्यादा आँखों में छाई हुई निराशा और उदासी—यह सब देखने के बाद भी क्या इनके विगत नष्ट-भ्रष्ट जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानने - पूछने को बाकी रह जाता है? ये शरणार्थी हैं, सांप्रदायिकता के आँधी-तूफान ने जिनका मूलोच्छेदन कर दिया है।

रालाराम ने कमीज की बाँह से माथे का पसीना पोंछा। इतनी देर से खड़े-खड़े दाहिना पैर सुन्न पड़ गया है। इस उम्र में घंटों खड़े रह कर धरना देना इतना आसान काम नहीं है। अगर आज उनका कोई लड़का होता तो फिर उन्हें यह तकलीफ क्यों उठानी पड़ती!

एक हाथ से खिड़की का किवाड़ पकड़ कर उन्होंने सहारा लिया। ऐसे कब तक खड़ रहा जा सकता है। इससे पहले एक दिन ठेलम-ठेला में धक्के खाते हुये बड़ी मुश्किल से उन्हें एक फार्म मिला था। उस फार्म को भर कर उन्होंने दे भी दिया। आज उन्हें बुलाया गया है, पूछताछ के लिये। यदि अफसर लोग संतुष्ट हो जायेंगे तो खेतीबारी करने के लिये उन्हें थोड़ी-सी जमीन मिल जायगी, यह क्या कम है? इस उम्र में नौकरी-चाकरी तो

होगी नहीं, और फिर उन्हें नौकरी ही कौन देगा। किसी प्रकार लुका-छिपा कर कमर में बाँधकर लाई हुई थोड़ी सी जमा-पूँजी को ही बैठकर खाना होगा।

रालाराम की आँखों में आँसू छलक आये। इसे ही कहते हैं, भगवान की मार। सौ बीघा जमीन, चार बड़े-बड़े बगीचे और ईख, गेहूँ तथा कपास की खेती। सिर्फ कपास से ही सालाना हजारों की आमदनी थी। दो मंजिला पक्का मकान। असली बार्मा-सैगुन लकड़ी के दरवाजे और खिड़कियाँ। सिर्फ उनके गांव में ही नहीं, बल्कि आस-पास के गावों में भी वैसा मकान नहीं था। क्या से क्या हो गया।

रालाराम फिर झुका। कपाल पर पसीने की बूँदें नहीं, इस बार उसने आँसू पोंछे। इस उम्र में यह दुःख भोगना भी उसकी किस्मत में बदा था।

दो-चार कदम आगे बढ़े। अब तेरह आदमी हैं। शायद अब ज्यादा देर खड़ा कहीं रहना पड़ेगा।

देश के बँटवारे के बाद गांव में रहना नामुमकिन था क्योंकि उसके धर्म और प्राण की खैर न थी। इसलिये भागते-भागते किसी तरह यहाँ आ पहुँचा। पर जब से यहाँ आया है, जमीन जायदाद की याद बराबर सताती है। फल-फूलों से लदे हुये वृक्ष और कपास के लहलहाते हरे खेत उसकी आँखों के सामने हमेशा नाचते रहते हैं।

इस जायदाद और सम्पत्ति की याद भला उसे क्यों न सतायेगी? वह उसे कोई खैरात में थोड़े ही मिल गई थी। अपना

ख़ून-पसीना एक कर, एक-एक पाई जोड़कर उसने इतनी विशाल सम्पत्ति एकत्रित की थी। नहीं तो सीधे-सादे धर्मोपदेशक पंडित देशराज शर्मा के लड़के को पहले कौन जानता-पहचानता था। बाप का पेशा ही यदि अपनाता तो फिर यह सब कुछ न होता। गर्व से सिर ऊँचा कर वह समाज में कैसे खड़ा हो सकता था। पोथी-पत्रा और धार्मिक पुस्तकों को एक कपड़े में बाँधकर उसने एक कोने में रख दिया और अपनी पत्नी के गहनों को बेच कर उसने सूद पर रुपया उधार देने का काम शुरू किया। शुरू-शुरू में तो लोक-लाज के ख़्याल से लोग उसके पास आने में हिचकते थे। लेकिन अभाव और जरूरत के सामने कैसी लज्जा और शर्म! सदर दरवाजे से भीतर घुसने में जिन्हें शर्म आती थी, वे ही पिछले दरवाजे से अपनी पत्नी को रालाराम की पत्नी के पास भेजते थे। रुपये में रुपये का फायदा और अगर गरीब असहाय विधवा हुई तो फिर कहना ही क्या! ऐसे आदमियों की भी कमी नहीं थी, जो आजीवन सिर्फ सूद ही चुकाते रहे।

रालाराम ने साल-दो साल में ही अपना कारोबार अच्छी तरह जमा लिया। लकड़ी की एक छोटी-सी संदूकची हमेशा उसके पास रहती। क्रमशः उस छोटी-सी संदूकची से काम नहीं चला तो लोहे के बड़े संदूक में चीजें रखी जाने लगीं। उस बड़े संदूक के भरने के साथ-साथ जमीन-जायदाद और मान - सम्मान भी जैसे भर गया। रालाराम की बात पर सारा गाँव उठता-बैठता था, उसके इशारे पर नाचता था।

सड़क पर जाती हुई जनता को देखते हुए रालाराम को बीते

हुये दिनों की याद आने लगी। सिर्फ एक इशारे पर सारे गाँव के आदमी जिसके यहाँ जमा हो जाते थे, कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वही व्यक्ति हजारों अन्य आदमियों के साथ कँधा से कँधा भिड़ाये दूसरे के दरवाजे के सामने हाथ फैलाये खड़ा है—जमीन के एक टुकड़े के लिए, गर्मी और वर्षा से बचने के लिये वह एक मामूली आच्छादन चाहता है।

अब सामने सिर्फ तीन आदमी और हैं। रालाराम ने तिरछी नजरों से एक बार घड़ी की ओर देखा, साढ़े तीन बजे हैं। आशा की जा सकती है कि पाँच बजे के पहले ही उसकी पुकार होगी।

धीरे-धीरे रालाराम आगे बढ़ गया। जेब से कागज का टुकड़ा निकाल कर उसने अपनी मुट्ठी में रखा। दस्तावेज वह अपने साथ अवश्य नहीं ला सका, पर सारी चौहद्दी उसे ज़बानी याद है। उत्तर में चढ्ढा का मकान, पूर्व में स्कूल का मैदान और पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में उसके अपने कपास के खेत। इन्हें वे कैसे भूल सकता है।

प्यादे की आवाज़ सुनकर उनका ध्यान भंग हुआ। अब उनकी बारी है। उन्होंने अपना माथा फिर पोंछा और लाठी टेकते हुये भीतर घुस गये।

चारों ओर मेजें लगी हुई हैं। कागज-पत्र और फाइलों का ढेर। आगे बढ़ कर सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठते ही उस आदमी ने पूछा—'नाम?' रालाराम ने अपना नाम बताया। बगल में रखी हुई केबिनेट से उस आदमी ने एक कार्ड निकाला। उसको ऊपर से नीचे तक एक बार अच्छी तरह देख लेने के बाद उसने

पूछा—'यहाँ आपका कोई नाते रिश्तेदार नहीं है ?'

रालाराम ने सिर हिलाया। अगर नाते रिश्तेदार ही होते तो इस अधेड़ अवस्था में इतनी दौड़-धूप और परेशानी की क्या जरूरत थी। एक समय जन और धन, किसी की भी कमी न थी, पर सब कुछ छोड़ कर चला आना पड़ा। इस उम्र में ऐसे जबरदस्त तूफान का सामना करना पड़ेगा, यह किसे मालूम था !

रालाराम ने उस व्यक्ति से जरा दोस्ती करने की कोशिश की।

'क्यों साहब, हाँ--आप क्या करते थे ?' सामने रखे हुए कागजों पर से बिना निगाह हटाये हुये ही उस आदमी ने पूछा—'आपका कुछ कारोबार था ?'

क्या कारोबार था, रालाराम यह बताने ही वाला था कि जाने क्या सोच कर रुक गया। हाथ से माथे के पसीने की बूँदें पोंछते हुये बोला,—'कारोबार और क्या ? कुछ जमीन-जायदाद थी, कुछ खेती - बारी भी होती थी, इससे ही किसी तरह काम चल जाता था।'

रालाराम को पूरी आशा थी कि यह उत्तर सुनने के बाद वह आदमी आँख उठाकर उनकी ओर देखेगा।

लेकिन उस आदमी ने लाल पेन्सिल से कार्ड पर जाने क्या लिखा और फिर गंभीर आवाज में कहा 'सी सेक्शन।'

'सी सेक्शन ?'

'जी, इस सीढ़ी से ऊपर पहुँचते ही बाईं ओर जो पहला कमरा है, वही 'सी' सेक्शन है। आगामी बुधवार को वहाँ मिलिये।'

रालाराम ने आखिरी बार कोशिश की—'देखिये न, बहुत

दिनों से दौड़-धूप कर रहा हूँ, यदि कृपा करके जल्दी ही…'

उस आदमी ने मेज पर रखी हुई घंटी बजाई। चपरासी के आते ही हुक्म दिया—'दूसरे आदमी को बुलाओ।'

भीड़ बहुत कम है। घंटे भर की प्रतीक्षा के बाद रालाराम की पुकार हुई। एक हट्टा-कट्टा व्यक्ति बैठा था। पंखे की हवा से उसके नीले रंग की टाई उड़ रही थी। बाईं ओर की छोटी मेज पर एक युवती बड़े ध्यान से टाइप कर रही थी।

रालाराम के कुर्सी पर बैठते ही उस आदमी ने सिर उठाया और कुछ मुस्कराते हुये कहा—'बार-बार यहाँ आने में आप लोगों को काफी परेशानी होती है। लेकिन क्या किया जाय, हालत तो आप देख ही रहे हैं। शरणार्थियों की संख्या इतनी अधिक है कि चौबीस घन्टे लगे रहने पर भी काम पूरा नहीं हो पाता।'

यह अफसर बहुत अच्छा मालूम होता है। रालाराम ने उसकी बात का समर्थन करते हुए अपना सिर हिलाया।

'आपका नाम?'

'जी, रालाराम शर्मा।'

'जिला?'

'सरगोधा।'

'गाँव का नाम?'

'भेरूवाल।'

और साथ - साथ टाइपराइटर की खट - खट एकदम बन्द हो गई। युवती ने अपना सिर घुमाकर उस व्यक्ति की ओर देखते हुये कहा 'गाँव का नाम भेरूवाल है?'

'हाँ, भेरूवाल। अरे हाँ, मिस कक्कड़, आप भी तो भेरूवाल की ही रहने वाली हैं न? मुझे ख्याल ही नहीं रहा। देखिये, आप इन महाशय को पहचान सकती हैं या नहीं? इनका नाम है, रालाराम शर्मा।'

युवती ने बहुत गौर से रालाराम को देखा। भौंहें जरा टेढ़ी कीं। होठों पर हल्की-सी मुस्कराहट खेल गई, फिर बोली—'गाँव छोड़े हुये मुझे एक लम्बा अरसा हो गया, गाँव वालों की मुझे कोई विशेष याद नहीं।'

युवती के मुँह घुमा लेने पर रालाराम उसकी ओर से अपनी आँखें नहीं हटा सका। उसे ऐसा लगा जैसे वह इस युवती को जानता है, पहचानता है। आज शहरी प्रसाधनों के कारण गाँव की लड़की का असली रूप शायद पूर्णतः ढक गया है। लेकिन तो भी ऐसा लगता है कि इसके पहले भी इस लड़की को उसने कहीं देखा था, आज की तरह ही—बिलकुल पास से।

रालाराम से बिना पूछे नहीं रहा गया—'भेरूवाल में मेरी सारी उम्र बीती है, प्रायः तीन पुश्त से हम वहीं हैं। आपका मकान कहाँ और किस ओर था?'

युवती ने अपना सिर एक बार फिर उठाया—'स्कूल बिल्डिंग के पास ही हमारा मकान था।'

'स्कूल बिल्डिंग के पास'—रालाराम ने कुछ सकुचाते हुये

कहा—'पश्चिम की ओर तो नन्दलाल का मकान था।'

'नन्दलाल मेरे पिता थे...।' युवती ने तेजी से टाइप करना शुरू कर दिया। मशीन की खट-खट आवाज की वजह से युवती के उन शब्दों को रालाराम के कानों तक पहुँचने में भी देर लगी। पर इतना सुनते ही उसका मुँह एकदम पीला पड़ गया, जैसे उसके शरीर में कहीं एक बूँद भी खून नहीं है। जलती हुई दियासलाई को फूँक मारकर बुझा देने पर जैसा होता है, ठीक वैसा ही।

नन्दलाल की लड़की है, इसीलिये इतनी जानी-पहचानी लग रही थी।

सामने बैठे हुये व्यक्ति ने तीन-चार लाइनें लिखीं और फिर उनकी ओर देखते हुये कहा—'ठीक है, अब आपको और कष्ट नहीं दूँगा। एक हफ्ते के भीतर ही आपके घर पर चिट्ठी चली जायगी।' यह कहने के साथ-साथ उस व्यक्ति ने नमस्कार के ढंग से अपने दोनों हाथ जोड़ दिये।

रालाराम को तो जैसे कुछ ख्याल ही नहीं था। कुर्सी से धीरे-धीरे उठा और दीवार के सहारे रखी हुई अपनी लाठी लेकर कमरे से बाहर निकल गया।

हाँ, नन्दलाल की ही बेटी है। उस दिन की उसकी आँखों की दृष्टि क्या भूली जा सकती है। प्रायः दस बारह साल पहले की घटना है। आज इस युवती को देखते ही वह घटना जैसे एकदम याद आ गयी, ज़रा भी कहीं, अस्पष्टता नहीं।

अपनी पत्नी की दवा-दारू के लिये नन्दलाल को अपना पैतृक

घर तक गिरवी रख देना पड़ा था। शादी के चार-पाँच साल बाद से उसने जो खाट पकड़ी तो फिर न उठी। जबतक उसकी चिता जल नहीं गयी तबतक नन्दलाल को कभी आराम नहीं मिला। गाँव के स्कूल का एक मामूली मास्टर। उसके पास कौन-सी जमा पूँजी इकट्ठी थी। पहले घर के बर्तन, फिर पत्नी के शरीर पर सोने के जो दो-चार मामूली चिह्न थे—ये सब खत्म हो जाने के बाद एक दिन रात को वह रालाराम के पास आया और उसके पैरों पर अपनी टोपी रख दी—'ऐसी मुसीबत में उसकी मदद करनी होगी, चाहे जैसे भी हो।'

रालाराम ने अपने हाथ तो जरूर छुड़ा लिये थे पर अनुरोध नहीं टाल सके। उस जरा सी एक रत्ती जमीन और खपरैल के मकान के लिये और दिया भी क्या जा सकता था। नन्दलाल उसके सिर ही पड़ गया, यदि पास-पड़ोस के लोग ही आड़े वक्त काम नहीं आयेंगे तो क्या बाहर वाले आयेंगे? रालाराम को राजी होना पड़ा। वे नन्दलाल को रुपया उधार दे देंगे, पर इसके लिये जमीन और घर-द्वार बन्धक रखने की क्या जरूरत? इतनी लिखा पढ़ी की भी क्या आवश्यकता? पर यह सब हुआ था। खाली हाथ भला नन्दलाल रुपये उधार क्यों माँगता और फिर जब बंधक का मामला था तो रालाराम की ओर से भी कानून के मुताबिक काम होना ही उचित था।

उस रात को रालाराम बहुत देर तक भगवान की मूर्ति के सामने ध्यानमग्न बैठा रहा था। अपने मन के एक कोने में छिपी हुई इच्छा का भी उसे पता था। पूर्व की ओर उसकी जमीन

बहुत कम थी। नन्दलाल की जमीन मिल जाने से···प्रणाम कर वह उठ खड़ा हुआ।

सीढ़ी से नीचे उतर कर रालाराम कुछ देर ठहरा। बड़ी कड़ी धूप है, कोई पक्षी भी नजर नहीं आता। सारा शहर जैसे सो रहा है। इतनी जल्दी घर जाकर ही क्या होगा? मकान नहीं, भट्ठी है। इससे अच्छा है कि किसी पार्क में पेड़ की घनी छाया के नीचे वैठकर यह दुपहरी काट दी जाय।

रालाराम एक पेड़ के नीचे आ बैठा।

कहाँ के आदमी से कब और कहाँ मुलाकात हो जाय, इसका कोई ठीक नहीं। उसने कभी इसकी कल्पना तक न की थी कि अपनी जमीन-जायदाद और घर-बार छोड़ कर इस अनजान शहर में भटकना पड़ेगा, दर-दर की ठोकरें खानी होंगी। और ऐसे में ही नन्दलाल की लड़की से मुलाकात हुई।

हवा में उड़ते हुये बादलों के समूह की तरह सारी बीती हुई घटनायें एक-एक कर उसकी आँखों के सामने आने लगीं।

अपने बरामदे में बैठे हुये नन्दलाल के घर में रोने-धोने की आवाज रालाराम ने सुनी थी! ऐसा कौन ज्यादा रोना-धोना था। एक बार सिर्फ गोकुल की आवाज और बीच-बीच में लड़की की विकृत आवाज सुनाई पड़ती थी। यह उम्मीद तो पहले से ही थी। मौत तो होगी ही, यह बात बाप या बेटी किसी से भी छिपी हुई नहीं थी। पर दोनों ही फूट-फूट कर रोये—एक व्यक्ति की मृत्यु से शोकातुर हो या आने वाले अन्धेरे दिनों का ख्याल कर।

कर्ज के मारे नन्दलाल परेशान था। वैद्य, दूधवाला, बिसाती सब एक साथ उस पर टूट पड़े। स्कूल के मंत्री से बहुत अनुनय-विनय करने पर भी कुछ फल नहीं हुआ। दो महीने से नन्दलाल स्कूल से गैरहाजिर था। अतः उसकी जगह पर एक नया मास्टर रख लिया गया। सुख-दुःख और बीमारी वगैरह तो मनुष्य के जीवन में लगी ही रहती हैं। पर इसी कारण शिक्षक के अभाव में लड़कों की पढ़ाई तो बन्द नहीं हो सकती।

रालाराम बहुत देर बाद मिलने गया था। बल्कि यह कहना ठीक होगा कि रास्ते में एकाएक उनकी नन्दलाल से भेंट हो गई थी।

पहले तो मौखिक सहानुभूति···मनुष्य चिरस्थायी नहीं है; इस नश्वर और प्रवंचनामय संसार से जिसे जितनी जल्दी छुटकारा मिले वह उतना ही पुण्यात्मा है। अन्त में उसने असली बात कही—'रुपया चुकाने की मियाद खत्म हो चुकी है, सात दिन पहले ही। अब तो कुछ न कुछ बन्दोबस्त अवश्य करना ही चाहिये।'

सड़क पर ही उसके दोनों हाथ पकड़ नन्दलाल दहाड़ मार कर रो पड़ा था। अभी उसे कम से कम महीने - दो महीने का समय और देना होगा। कहीं नौकरी लग जाने दो, जरा सँभल जाने दो।

रालाराम अन्यायी नहीं है। नन्दलाल की ओर गौर से देखते हुये उसने बहुत शांत स्वर में पूछा था—'पर महीने-दो महीने में तुम इतने रुपये कैसे इकट्ठे कर सकोगे, नन्दलाल? क्या कहीं से

रुपये मिलने की आशा है ?'

नन्दलाल ने कुछ देर तक आकाश की ओर देखा और फिर रालाराम की ओर देखता रह गया। रालाराम के चेहरे पर सहानुभूति, दया अथवा करुणा का लेशमात्र चिह्न भी कहीं नहीं था।

'तुम लोगों के साथ यही तो मुसीबत है, नन्दलाल, लेते समय तो तुम लोग ऐसा वायदा करते हो जैसे ठीक समय पर पाई-पाई चुकता कर दोगे। लेकिन जहाँ रुपये मिले कि आँखें फेर लेते हो, देने वाले को पहचानते तक नहीं। भई, हम भी तो घर-गृहस्थी वाले ठहरे, हमारे बाप-दादा कोई खजाना तो रख नहीं गये हैं। जो थोड़ा-बहुत रुपया है, उसी का हेर-फेर कर हमें भी अपना खर्च चलाना पड़ता है।' और यह कह कर आगे बढ़ते हुये उन्होंने कहा—'देखो, अब मैं और क्या कहूँ। तुम जो ठीक समझो, वही करना।'

नन्दलाल चुपचाप खड़ा रहा। पर दूसरे दिन सुबह बरामदे में खड़े हुये रालाराम ने अपने नौकर को ऊँची आवाज में जो आदेश दिया था, वह नन्दलाल ने अच्छी तरह सुना था। शाम को शहर से वकील राजेन्द्र प्रसाद को बुला लाने का हुक्म नौकर को दिया गया था।

शहर से वकील आने के पहले नन्दलाल और एक बार आया था। उसके चेहरे पर मुर्दनी छाई हुई थी। सिर्फ कुछ घन्टों में ही नन्दलाल की उम्र जैसे कई वर्ष बढ़ गई थी। लेकिन रालाराम जरा भी टस से मस नहीं हुआ। अगर इतनी जल्दी ही द्रवित हो जाता तो फिर इतने थोड़े से समय में अच्छी तरह से अपना

कारबार कैसे जमा लेता। सीधी अंगुली से भला कभी घी निकलता है। जैसा रोगी वैसी दवा।

पार्क में लोगों का आवागमन होते ही रालाराम चंचल हो उठा। अब यहाँ से चलना चाहिये।

सात दिन की कौन कहे, पूरे बीस दिन बीत गये। पर उन्हें कोई चिट्ठी नहीं मिली, कोई खबर नहीं। रालाराम चिन्तित हो गया। धूप क्रमशः बढ़ रही है। इस कमरे की गर्मी में तो वह एकदम झुलस जायगा। इससे अच्छा है कि सुबह-सुबह ही वहाँ पहुँचा जाये।

अगर उस दिन वाले हृष्ट-पुष्ट व्यक्ति से एकांत में मुलाकात हो जाये तो अच्छा है। वह उसके हाथ पकड़ लेगा। कहेगा, यह बूढ़ा तो तुम्हारे ही आसरे है, इसकी मदद करनी होगी। लेकिन नन्दलाल की लड़की के सामने वह ऐसा नहीं कह सकता, यह नहीं कर सकता। अपनी बड़ी-बड़ी रहस्यमयी आँखों से न जाने कैसे वह उसको देखती है। उसकी आँखों में उस रात की घटना जैसे स्पष्ट नजर आती है। काफी पुरानी घटना है। नन्दलाल की बेटी को क्या सारी घटना याद है? उस वक्त तो वह छोटी थी।

उसके पहुँचते ही उस दिन वाला वह अफसर कुछ रुखाई से बोला—'शायद आपको अभी तक कार्ड नहीं मिला। क्या बताऊँ साहब, इतना ज्यादा काम करना पड़ता है कि दिमाग खराब हो जाता है। घबरायें नहीं, यदि आप लोग धैर्य नहीं रखेंगे तो फिर हम लोगों का काम करना ही मुश्किल हो जायगा। आप

जानते ही हैं कि एक 'केस' तो है नहीं। थोड़ा समय दीजिये, सब ठीक हो जायगा। अच्छा नमस्कार।' उस व्यक्ति ने हाथ जोड़े और अपने काम में लग गया।

रालाराम किन्तु इतनी देर तक सामने बैठी हुई नन्दलाल की बेटी को ही देख रहा था। युवती ने एक बार जरा आँख उठाकर उनकी ओर देखा तक नहीं। दत्तचित्त हो टाइप करती रही। शायद बहुत काम है। ज्यादा काम की वजह से ही शायद वह उस दिन की घटना भूल गई है। रालाराम को खुद ही वह घटना अच्छी तरह याद नहीं है। तब फिर इसे क्या ख़्याल होगा। रालाराम फिजूल ही चिन्तित हो रहा था।

सीढ़ी से नीचे उतरते ही एक व्यक्ति ने सिर पड़कर उससे जैसे जबरदस्ती दोस्ती की। घुटा हुआ सिर, चपटी नाक, छोटी-छोटी आँखें, फटा पैंट और बुश-शर्ट, मुख पर कुटिलता और धूर्तता के स्पष्ट चिह्न। अपना सिर झुका, नमस्ते करते हुये बोला—'क्यों साहब, आपका काम हुआ?'

कोई दूसरा मौका होता तो शायद रालाराम बिना कोई जवाब दिये ही आगे बढ़ जाता। पर आज कुछ और ही बात थी। किसी ने सहानुभूति पूर्वक पूछा तो सही।

'कहाँ हुआ? दौड़-धूप करते-करते पैर घिस गये'—उदास और निराशा भरे स्वर में रालाराम ने उत्तर दिया।

'यहाँ का यही दस्तूर है। जबतक भीतर आपका कोई आदमी नहीं होगा, तब तक कुछ नहीं हो सकता। आपने अपनी अर्जी तो दे दी है न?'

'हाँ, वह तो बहुत दिनों पहले ही दे दी थी, अब सिर्फ कार्ड मिलने की प्रतीक्षा में हूँ।'

'तब तो असली काम अभी बाकी ही है'—उस आदमी ने जरा आँखें नचाते हुए कहा। फिर जरा और भी निकट आकर आँख मारते हुए बोला—'अफसरों से जान-पहचान नहीं है? अगर उनसे नहीं है तो उनके किसी साले-बहनोई या भाई-भतीजे का का पता लगाइए। उनकी सिफारिश से आपका काम फौरन हो जायगा। मैं यहाँ की नस-नस से वाकिफ हूँ। आज दो साल से यहाँ बैठ कर लोगों की अर्जियाँ लिखना ही मेरा काम है।'

डूबते हुए रालाराम को जैसे तिनके का सहारा मिला। 'यहाँ जान-पहचान तो है, नन्दलाल की बेटी से। लेकिन क्या उसके हाथ में कुछ है?'

यह सुनते ही वह आदमी जैसे उछल पड़ा—'अरे आप क्या कहते हैं, 'सी' सेक्सन की मिस कक्कड़? घुँघराले बाल, इकहरा बदन, गोरा रंग—बस, बस, तब तो आपका काम बन गया। एक ही गाँव की है तो फिर आपका अनुरोध कैसे टाल सकती है। उससे मिल कर जरा एक बार कोशिश करिये न! बेहतर होगा कि आप सीधे उसके मकान पर चले जायँ।'

'पर उसकी इतनी थोड़े ही चलती होगी। एक अफसर की मामूली टायपिस्ट है'—रालाराम ने संदेह प्रकट किया।

'अरे वाह, आप भी क्या कहते हैं, यहाँ के दफ़्तरों का रंग ढंग ही कुछ दूसरा है। वह सब ठीक कर देगी। कल ही मैंने देखा था कि डिप्टी डायरेक्टर के साथ उनकी मोटर में जा रही

थी। अब आप देरी न करें।'—यह कहने के साथ-साथ वह एकदम निकट आ गया और रालाराम के कान के पास मुँह ले जाकर बोला—'आपका काम हो जाय तो इस गरीब को न भूलियेगा। मैं यहीं सीढ़ी के पास या सामने वाले पेड़ के नीचे बैठता हूँ। हाँ, मेरा नाम रामनाथ चोपड़ा है। अच्छा, नमस्ते।' कह कर वह आदमी बरामदे से बाहर चला गया।

रालाराम वहाँ बहुत देर तक चुपचाप खड़ा सोचता रहा। तो नन्दलाल की बेटी से काम बन सकता है। उससे एक बार कह कर देखा जाय। चुपचाप कहेगा, अपनी अवस्था समझाते हुए और बुढ़ापे की दुहाई देते हुए। अब वह नन्दलाल की बेटा नहीं है, मिस कक्कड़ है। पोशाक, चाल-ढाल, रूप-रंग पहले जैसा कुछ नहीं है। सब बदल गया है। तब फिर बीते हुए दिनों की पुरानी बातें भी क्या याद होंगी।

वकील राजेन्द्र प्रसाद की चिट्ठी मिलने के बाद नन्दलाल उससे मिलने नहीं आया था। पर एक दिन वह नहर के किनारे-किनारे जा रहा था। शाम खत्म हो चुकी थी, झुटपुटा था और आकाश में पीला चाँद। अचानक किसी मुलायम व नरम चीज से पैर टकराते ही रालाराम एकदम चौंक पड़ा और पीछे हट गया। कहीं साँप-वाँप तो नहीं है। धुँधली रोशनी में उसे केश नजर आये।

'कौन है?'

'मैं'—रोते हुए स्वर में उत्तर मिला। नन्दलाल की बेटी ने अपना मुँह ऊपर उठाया।

क्षण भर में ही रालाराम के मुँह पर कठोर भाव आ गये—'क्या बात है ? मुझसे मिलने में क्या तुम्हारे बाप की इज्ज़त कम होती थी जो रात-बिरात में अपनी लड़की को भेजा है। इसका मतलब ?'

'पिता जी बहुत तेज बुखार में पड़े हैं। तीन दिन से उन्हें होश नहीं है, पानी तक नहीं पीया है। हम लोगों को सिर्फ एक महीने का समय और दीजिये। इस मुसीबत में हमें बेघरबार न करें।'

रालाराम हँस पड़ा था। इससे पहले भी ऐसी ही अनेक अवस्थाओं का उसे सामना करना पड़ा है। रोते हुए, गिड़गिड़ाते हुए, किसी न किसी बहाने समय चाहिए। पर इन सब बातों में आ जाने से क्या उनका काम चल सकता है ?

रालाराम ने कड़ी आवाज में जवाब दिया था—'हटो, दूर हटो, मेरे पैर छोड़ दो। बन्धक की मियाद पूरी हो चुकी है, तुम्हें मकान छोड़ना ही पड़ेगा। यह सब नियम और कायदे-कानून की बातें हैं। कायदे-कानून की नजरों में सब बराबर हैं। किसी की भी खातिर मैं गैरकानूनी या बेकायदा काम नहीं कर सकता।'

उसकी बात खत्म होने के पहले ही नन्दलाल की बेटी पैर छोड़ कर उठ खड़ी हुई थी, एकदम सीधी खड़ी हो गयी थी—रालाराम के सामने। बात खत्म होते ही आधे अन्धकार में उसकी बड़ी-बड़ी आँखें अग्निशिखा की तरह चमक उठी थीं। एक-दो मिनट। फिर वह चुपचाप अन्धकार में लुप्त हो गयी।

आज नन्दलाल की बेटी बिल्कुल बदल गयी है, सब कुछ

बदल गया है। सिर्फ उसके देखने का ढंग, उसकी दृष्टि वैसी ही है।

रालाराम मौके की तलाश में रहा। इतने आदमियों के सामने मिस कक्कड़ के घर का पता पूछने में उसे न जाने क्यों शर्म आई। इससे अच्छा है कि आफिस के बाद एकांत में यहीं उससे मिल लिया जाय। उसे सारा दुखड़ा सुना सकेंगे। नन्दलाल की बेटी अपने पैरों पर खड़ी हो सकी है, इसमें तो उनके गाँव का ही गौरव है। रालाराम ने बहुत सी बातें सोचीं, पर सुयोग नहीं मिला। प्रायः हर रोज ही हैट-कोट पहने हुए एक सुन्दर से नौजवान के साथ मिस कक्कड़ उसकी लाल रंग की मोटर में चली जाती हैं। और किसी-किसी दिन दफ्तर में काम करनेवाली अन्य लड़कियों की टोली के साथ जाती हैं। सड़क के किनारे एक नीम के पेड़ की आड़ में लाठी के सहारे रालाराम खड़ा रहता है, और फिर ठंढी साँस छोड़कर चुपचाप अपने घर की राह लेता है।

कुछ दिनों बाद रालाराम को सुयोग मिल गया। शाम हो चुकी थी। सड़क पर बिजली की धुँधली रोशनी थी। दफ्तर में काम करनेवाले प्रायः सब एक-एक कर चले गये, यहाँ तक कि वह दुबला-पतला सुन्दर नौजवान भी अपनी लाल मोटर में चला गया। रालाराम चिंतित हो गया। कहीं मिस कक्कड़ पहले ही तो नहीं चली गयीं?

पर नहीं, कुछ देर बाद ही मिस कक्कड़ सीढ़ी से नीचे उतरती नजर आईं। उनके चेहरे पर प्रसन्नता थी। अपने हाथ का बैग धीरे-धीरे हिला रही थीं। साथ में कोई नहीं था। सड़क पर आते ही रालाराम आगे बढ़ गये।

'कहो, अच्छी तरह हो ?'

मिस कक्कड़ तो जरा चौंक गयीं। पर फौरन ही अपने को सँभाल लिया—'जी , अच्छी ही हूँ। पर आप इस वक्त यहाँ ? आपके घरवाले सब अच्छी तरह हैं ?'

'क्या अच्छी तरह हैं ?' रालाराम ने अपना माथा ठोका,—'इस बुढ़ापे में यह दुःख भोगना बदा था।'

मिस कक्कड़ को दूसरे रास्ते की ओर मुड़ते हुये देख कर रालाराम ने बातों का रुख बदला—'यहाँ कई दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा में था।'

'मेरी प्रतीक्षा में ?'

'हाँ, लेकिन किसी भी दिन तुम अकेली नजर नहीं आयीं।'

'क्या बात है, कहिये ? मैं आपके किस काम आ सकती हूँ ?'—मिस कक्कड़ एकदम सीधी खड़ी हो गईं।

अब रालाराम और भी नजदीक सरक आये। दर्द भरी मुलायम आवाज—'तुम चाहो तो सब कुछ कर सकती हो। यह देखो न, आज दो महीनों से तुम्हारे आफिस में दौड़-धूप कर रहा हूँ, लेकिन अभी तक कुछ नहीं हुआ। आज नहीं कल, कल नहीं परसों—इसी तरह एक के बाद एक तारीख पड़ती जाती है। लेकिन मेरे दिन कैसे कट रहे हैं, अगर तुम्हें यह मालूम हो तो

तुम्हारी आँखों में भी आँसू छलछला आयेंगे।' रालाराम ने कमीज की बाँह से आँसू पोंछे,—'तुम यदि डिप्टी डायरेक्टर से एकबार जरा कह दो तो फिर सारा काम बन जायगा, सब ठीक हो जायगा।'

मिस कक्कड़ ने अपनी भौंहें जरा टेढ़ी कीं—'पर मेरे कहने से ही हो जायगा, यह आपसे किसने कहा ? इसके अलावा जहाँ तक मेरा ख्याल है, आपसे पहले अभी पचास शरणार्थियों का नाम रजिस्टर्ड है। एक .ाद एक नम्बर से ही तो होगा।'

भावावेश में रालाराम मिस कक्कड़ के हाथ पकड़ने वाला था, पर जाने क्या सोच कर उसने अपने को सँभाल लिया,—'मुझे पता चला है कि यदि तुम डिप्टी डायरेक्टर से कह दो, तो सबसे पहले मेरे लिये कुछ न कुछ प्रबन्ध हो ही जायगा। कुछ भी हो, हमलोग हैं तो एक ही गाँव के......।'

रालाराम अभी शायद और भी बहुत कुछ कहना चाहता था, पर मिस कक्कड़ की मुख-मुद्रा देखकर एकाएक चुप हो गया।

उस रात की तरह बड़ी-बड़ी आँखों में अग्निशिखा चमक उठी, होठ काँपने लगे, कान तक लाल हो गये। शब्द नहीं, मिस कक्कड़ ने रालाराम के कानों में मानों खौलता हुआ तेल डाल दिया—

'यह सब नियम और कायदे-कानून की बातें हैं। आफिस के भी कायदे - कानून हैं, यह आप जानते हैं न ? कायदे - कानून की नजरों में सब बराबर हैं। किसी की भी खातिर मैं गैरकानूनी या बेकायदा काम नहीं कर सकती।'

लड़खड़ाते कदमों से रालाराम पीछे हट गया। आस - पास अगर कहीं अन्धकार होता तो ज्यादा अच्छा था। विजली की रोशनी में सब कुछ स्पष्ट और उग्र है।

लेकिन रालाराम को बड़ा आश्चर्य हुआ। सिर्फ उस रात के ज्यों के त्यों शब्द ही नहीं, रालाराम की आवाज तक की हूबहू नकल नन्दलाल की बेटी ने आज कर ली थी।

पत्थर की आंख

'नहीं। अब मैं एक महीना तो क्या एक दिन भी नहीं ठहर सकता। एक महीने का मतलब है कि और एक महीने का किराया। सुनिये साहब, इस महीने के अन्त में ही आपको यह कमरा खाली कर देना होगा नहीं तो-'

'सिर्फ एक महीना और। इस चित्र के खत्म होते ही मैं आपको एक साथ तीन महीने का किराया दे दूँगा। सच जानिये, यह चित्र बहुत अच्छे दामों में बिकेगा।'

कलाकार की बातों पर मकान मालिक को विश्वास नहीं होता। यह कमरा उसने चार महीने से किराये पर लिया है, और उस पर

भी तीन महीने का किराया बाकी है। अब और एक महीने रहने देने का मतलब है, चार महीने का किराया।

'नहीं साहब, अब मैं आपको खूब अच्छी तरह जान गया हूँ। और कितने दिनों तक मुलाहज़ा करूं ? इतने दिनों से आप सिर्फ बातें बनाकर मुझे टालते आ रहे हैं। दरअसल, आप बेकार हैं, कहीं कुछ काम-काज नहीं करते। अगर कुछ कमाते-धमाते होते तो यह तसल्ली रहती कि आज न सही, दो-चार रोज बाद ही चुका दोगे।'

'आपकी बड़ी कृपा होगी—सिर्फ़ एक महीने का वक्त और दीजिये।'

'एक महीने में तो तीस दिन होते हैं—अब तो एक दिन भी नहीं। दुनिया भर के बेकार और निखट्टू मेरे मकान में ही आ जुटे हैं।'

अपमान और क्षोभ से कलाकार चुप रहता है। अगर रट-कण्ट्रोल में रुपया जमा कराने लायक आज उसकी स्थिति होती तो वह इस मकान-मालिक को कान पकड़ कर निकाल बाहर करता। उसके कठोर चेहरे पर कहीं बिंदुमात्र भी करुणा का चिह्न नहीं है। कसाई ! पत्थर !

निष्फल क्रोध में भरकर कलाकार उसे मन ही मन कोसता है।

मकान-मालिक खड़ा खड़ा उसके बनाये हुये अधूरे चित्र को देख रहा है। यह क्या ख़ाक चित्र बनाना जानता है। ऐसा चित्र भी कोई पैसा देकर खरीदता है ? दुनिया में बेवकूफों की कमी नहीं है, तभी तो ऐसे चित्र बिकते हैं।

कुछ देर तक देखने के बाद मकान-मालिक को चित्र में बनी हुई दोनों आँखें अच्छी लगती हैं। वे आँखें अब भी निस्तेज हैं, निष्प्राण हैं। कलाकार की तूलिका ने उनमें अभी जान नहीं डाली है। दोनों काली पुतलियों में अभी सजीवता नहीं आयी है।

अच्छी लगें या न लगें, लेकिन एकाएक न जाने क्या सोचकर मकान-मालिक कुछ नरम पड़ गया।

बोला—'अच्छा, और एक महीने का वक्त दे सकता हूँ। लेकिन एक शर्त है।'

'क्या शर्त है?' बेबस कलाकार ने भी बुद्धिमान की तरह अपने निष्फल क्रोध को मन ही मन दबा कर पूछा।

'आप कैसे कलाकार हैं?—आपको इसका परिचय मुझे देना होगा।'

कलाकार उसे जिज्ञासु दृष्टि से देखने लगा।

'मेरी एक आँख जन्म से खराब थी। कई वर्ष पहले मैंने उसमें एक पत्थर की आँख लगवा ली है। पत्थर की आँख ऐसी अच्छी है कि एक तो मैं और दूसरे डाक्टर के अलावा अन्य कोई भी तीसरा व्यक्ति नहीं बता सकता कि मेरी कौन-सी आँख नकली है और कौन-सी असली। और तो और, मेरे मुन्ना की माँ भी यह नहीं बता सकती। आप समझे?'

'हाँ, मैं सब सुन रहा हूँ।'

'सुना है कि आप बहुत उच्चकोटि के कलाकार हैं। आज पता चलेगा कि आप में कितनी योग्यता है?'

'अच्छा, आप अपनी शर्त बताइये।'

'अगर आप यह बता सकें कि कौन-सी आँख पत्थर की है और कौन-सी असली, तो मैं आपको एक महीने का वक्त और दे सकता हूँ। यही शर्त है।'

कुछ देर तक मकान-मालिक के चेहरे की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कलाकार ने पूछा—'सिर्फ एक महीना?'

'हाँ, सिर्फ एक महीना।'

'आपकी बायीं आँख पत्थर की है।'

'आश्चर्य! क्यों भाई तुमने यह कैसे बता दिया?'

'बताना वाकई बहुत मुश्किल था।' दार्शनिक गांभीर्य से कलाकार ने जवाब दिया—'जब आपने 'सिर्फ एक महीना' कहा तब मैंने यह स्पष्टतः गौर किया कि आपकी बायीं आँख में न जाने कैसी एक कोमल करुणा की आभा खेल गयी। फिर समझते देर न लगी कि वही आपकी पत्थर की आँख है।'

'यह तो स्वाभाविक ही है कि आपकी पत्थर की आँख में ही कोमलता की आभा पहले झलकेगी।'

★★